पाँच
कहानियाँ

मिखाईल शोलोखोव कृत

पाँच कहानियाँ

रूपांतरकार

रीमा पाराशर

संपादक

वेद प्रकाश सोनी

प्रकाशक

विश्व पुस्तक केन्द्र

ए-47, अमर कालोनी, लाजपत नगर

नई दिल्ली-110024

ISBN : 81-8107-000-3

प्रकाशक :

विश्व पुस्तक केन्द्र

ए-47, अमर कालोनी, लाजपत नगर

नई दिल्ली-110024

मूल्य :

125.00 रुपये

संस्करण :

सन् 2004

आवरण :

एस॰ के॰ ग्राफिक्स

दिल्ली-110032

शब्द-संयोजन :

एस॰ के॰ कम्प्यूटर्स

दिल्ली-110032

मुद्रक :

एस॰ एन॰ प्रिंटर्स

दिल्ली-110032

अनुक्रम

पराया खून

मौसम का पहला हिमपात हुआ। रात को दोन के पार से तेज हवा चल पड़ी, स्तेपी में पाले से ढकी झाड़ियां खड़खड़ाने लगीं, हवा ने बर्फ ने अस्त-व्यस्त ढेरों को संवार दिया और उबड़-खाबड़ सड़कों को समतल बनाने लगी।

रात ने कज्जाकों के गांव को नीरवता के हरित धुंधले आवरण से ढक दिया। घरों के पिछवाड़े में अनजुती, जंगली घास से ढकी स्तेपी ऊंघ रही थी।

आधी रात को बीहड़ों में भेड़िए की दबी-दबी हूंक सुनाई पड़ी, गांव के कुत्तों ने भौंककर उसका जवाब दिया और गवरीला दादा की नींद टूट गई। अलावघर की टांड़ से पैर लटकाकर, बल्ली को पकड़े हुए वह बड़ी देर तक खांसते रहे, बलगम थूककर उन्होंने तंबाकू की थैली निकाली।

हर रात मुर्गों की पहली बांग के बाद दादा उठ जाते, बैठे-बैठे सिगरेट पीते, खांसते, खंखारकर फेफड़ों से बलगम निकालते। खांसी के दौरों के बीच दिमाग में चिर-परिचित विचारों का तांता बंध जाता। दादा की सोच का विषय बस एक ही था—उसका बेटा, जो युद्ध में लापता हो गया था।

इकलौता था—पहला और आखिरी। उसी के लिए दिन-रात हाड़तोड़ काम करते थे। जब लाल सेना से लड़ने के लिए उसे मोर्चे पर भेजने का समय आया—बैलों की दो जोड़ी बाजार ले गए, उनकी बिक्री से मिले पैसों से एक कल्मीक से फौज लायक घोड़ा खरीदा। घोड़ा क्या, पूरा तूफान था, हवा से बातें करता था। संदूक से अपने दादा की चांदी के काम की जीन और लगाम निकालीं। विदाई के समय कहा—

"देखो, पेत्रो, मैंने तुम्हें बढ़िया सामान से लैस कर दिया है, कोई अफसर तक ऐसे सामान के साथ शान से जा सकता है....उसी तरह सेवा करना जैसे तुम्हारे बाप ने की, कज्जाक फौज और शांत दोन की नाक मत कटने देना! तुम्हारे दादा-परदादों ने जारों की सेवा की, तुम्हें भी करनी चाहिए!...."

दादा हरी चांदनी से चमकती खिड़की में देख रहे हैं, बाहर आंगन में सरसराती, न जाने क्या तलाशती हवा की सांय-सांय को सुनते हुए उन दिनों को याद कर रहे हैं जो न लौटेंगे, फिर न वापस आएंगे....

रंगरूट की विदाई के समय छप्पर गवरीला के तले कज्जाक गला फाड़-फाड़कर पुराना कज्जाक गीत गा रहे थे--

अरे हम लड़ते हैं पातें बांधकर,
सुनते हैं सिर्फ हुक्म।
कमांडर आका हमारे देते जो हुक्म
पूरा करते हैं हम उसको
मार-काट करके ही लेते हैं हम दम!....

मेज पर बैठा पेत्रो मदहोश था, उसका चेहरा सफेद-फक था, उसने आखिरी, 'रकाब' का जाम पीकर थकान के साथ आंखें भींचीं, पर घोड़े पर सधकर बैठ गया। तलवार ठीक की और जीन से झुककर अपने आंगन की मुट्ठी भर मिट्टी उठा ली। न जाने अब कहां वह सोया पड़ा है, न जाने परदेस में किस जमीन की गोद में लेटा हुआ है?

दादा जोर से खांसते हैं, छाती में फेफड़े घर्र-घर्र करते हैं और जब बलगम निकालकर वह झुकी कमर को बल्ली से टिकाते हैं वही जाने-पहचाने विचार फिर उन्हें घेर लेते हैं।

बेटे को विदा किया और एक महीने बाद लाल सैनिक आ गए। दुश्मनों की तरह वे परंपरागत कज्जाक रहन-सहन में घुस गए, दादा के आम, दैनंदिन जीवन को उन्होंने खाली जेब की तरह पलट दिया। पेत्रो मोर्चे की उस ओर, दोनेत्स नदी के पास था, लड़ाइयों में बहादुरी दिखाते हुए जमादार बनने का जतन कर रहा था और गांव में गवरीला दादा मन ही मन परदेसियों, 'लाल वालों' के प्रति तीव्र घृणा को उसी तरह बड़े प्रेम से पाल-पोस रहा था जैसे कभी उसने अपने लाड़ले पेत्रो को पाला था।

वह उन्हें चिढ़ाने के लिए कज्जाक स्वाधीनता की प्रतीक लाल पट्टियों वाली शलवारनुमा ऊनी पतलून में घूमता था। गारद की नारंगी किनारी वाला चेकमेन[1] पहनता था, जिस पर कभी लगे सार्जेंट-मेजर के फीतों के निशान थे। जार की जी-जान से सेवा के लिए मिले मेडल और क्रॉस छाती पर टांगकर रविवार के दिन गिरजे जाता। भेड़ के खाल के ओवरकोट को खोले रखता ताकि सब देख सकें।

एक बार गांव की सोवियत के अध्यक्ष ने मिलने पर उसे कहा—

"उतार दे, दादा ये लटकने! गुजर गया इनका जमाना।" बुड्ढा भड़ककर बोला—

"तू कौन होता है ऐसा हुक्म चलाने वाला, क्या तूने टांगा था इन्हें, जो उतारने को कह रहा है?"

"जिसने टांगा, वह तो कब से कब्र में सड़ रहा है।"

"सड़ने दो!....पर मैं नहीं उतारूंगा! क्या मरे से उतारेगा?"

1. चेकमेन—कज्जाक सैन्यदल की वर्दी का कोट।

"तुम भी क्या कहते हो....मैं तो तुम्हारा भला सोचकर सलाह दे रहा हूं, मेरी बला से तो तुम इनसे चिपककर सोओ, पर कुत्ते....कुत्ते तो तुम्हारी पैंट पर पैबंद लगवा देंगे! वे तो अब ऐसे भेस में लोगों को देखने के आदी नहीं रहे, तुम्हें पराया समझ बैठेंगे...."

वह अपकार का कड़वा घूंट पीकर रह गया। तमगे उतार डाले पर मन ही मन अपकार की ठेस बढ़ते-बढ़ते क्रोध में बदल रही थी।

बेटा लापता हो गया—किसके लिए अब दौलत जमा करे। कोठरियां ढह रही थीं, मवेशी बाड़ा तोड़ रहे थे, भेड़-बकरियों की कोठरी का छप्पर आंधी में उड़ गया था, अब उसकी कड़ियां गल रही थीं। खाली अस्तबल में चूहे मौज कर रहे थे, बरामदे में रखी दरांती जंग खा रही थी।

कज्जाक गांव से जाते समय घोड़े ले गए थे, बचे-खुचे 'लाल वाले' ले गए। और लाल सैनिकों से एवज में मिले, टांगों पर लंबे-लंबे बालों और बड़े-बड़े कानों वाले आखिरी घोड़े को पतझड़ में मखनो[1] के लोग फोकट में खरीद ले गए। उसके बदले वे बुड्ढे को एक जोड़ी अंग्रेजी गेटर छोड़ गए।

"हम से भी तुम्हें कुछ मिलना ही चाहिए!" मखनो का मशीनगन चालक आंख मारकर बोला। "हमारे माल से अमीर बनो दादा!...."

दसियों साल से जमा की गई संपत्ति स्वाहा हो रही थी। काम करते हुए हाथ लटकते थे; पर वसंत में जब खाली, दीन और क्लांत स्तेपी पर पांव पड़ते—बूढ़े को भूमि अपनी ओर खींचती, रात को उसका अश्रव्य स्वर पुकारता लगता। बूढ़ा बेबस होकर बैलों को हल में जोतता और स्तेपी की छाती पर हल चलाने के लिए चल पड़ता, अतृप्त श्यामल भूमि में गेहूं के उम्दा बीज बिखेरता।

कज्जाक सागर तट से और सागर पार से लौट रहे थे पर उनमें से किसी ने भी पेत्रो के नहीं देखा था। उसके साथ विभिन्न रेजिमेंटों में रहे, विभिन्न स्थानों पर गए—रूस भला छोटा है?—पर पेत्रो की रेजिमेंट में शामिल उसके गांववासी कुबान प्रदेश में कहीं ज्लोबिन के दस्ते से मुठभेड़ में अपनी पूरी रेजिमेंट के साथ खेत रहे थे।

गवरीला अपनी बुढ़िया से बेटे के विषय में लगभग कोई बात नहीं करता था

रात को सुनता कि बुढ़िया तकिए को आंसुओं से भिगो रही है, नाक से सुड़-सुड़कर रही है।

"क्या हुआ बुढ़िया?" वह कराहकर पूछता।

कुछ देर चुप रहकर वह बोलती—

"लगता है अलावघर की गैस भर गई है घर में...सिर में दर्द-सा हो रहा है।"

---

1. मखनो--उक्राइना में सोवियत सत्ता के खिलाफ लड़ने वाले एक गिरोह का सरदार।

वह यह न जताता कि उसे असलियत मालूम है, सलाह देता–
"अरे खीरे की कांजी पी लो। कहो तो तहखाने से ले आऊं?"
"सो जाओ। ऐसे ही ठीक हो जाएगा!...."

और फिर मकड़ी के अदृश्य जाले की तरह घर में नीरवता छा जाती। चांद धृष्टता के साथ खिड़की में झांकता, पराए, दुख, मां की पीड़ा का आनंद लेता।

फिर भी उन्हें बेटे के लौटने की प्रतीक्षा और आशा थी। गवरीला ने भेड़ की खालें कमाने के लिए दे दीं और बुढ़िया से बोला–

"हम दोनों तो जैसे-तैसे गुजारा कर लेंगे, पर पेत्रो लौटकर क्या पहनेगा? सर्दियां आ रही हैं, उसके लिए भेड़ की खाल का ओवरकोट सिलवा लेना चाहिए।"

उन्होंने प्योत्र के नाप का ओवरकोट सिलवाकर संदूक में रख दिया। उसके लिए रोजमर्रा पहनने के बूट भी बनवा लिए। बूढ़े ने अपना वर्दी का नीला फ्रेंच कोट संभालकर रख रखा था, उस पर तंबाकू छिड़क दिया ताकि कीड़े न काट दें। और जब मेमने को हलाल किया तो उसकी खाल से बूढ़े ने बेटे के लिए टोपी सी और खूंटी पर टांग दी। आंगन से जब घर में घुसता, तो लगता कि बस अब पेत्रो बगल के कमरे से बाहर निकलेगा और मुस्कराकर पूछेगा, "क्यों, बाबा, ठंड है बाहर?"

कोई दो-एक दिन बाद की बात है। शाम को बूढ़ा ढोरों को चारा-पानी देने गया था। नांद में चारा डालकर वह कुएं से पानी खींचना चाहता था, पर उसे याद आया कि दस्ताने तो घर में भूल आया। लौटकर उसने दरवाजा खोला और देखा कि बुढ़िया बेंच के पास घुटनों के बल बैठी पेत्रो के लिए बनाई गई नई टोपी को छाती से चिपकाकर, बच्चे की तरह झुला रही थी।...

बूढ़े की आंखों में अंधेरा छा गया, वह खूंख्वार जानवर की तरह उस पर झपटा, उसे जमीन पर धकेलकर होंठों पर निकले फेन को गटकते हुए चिल्लाया–

"छोड़, डायन!....छोड़!....तू कर क्या रही है?!"

टोपी छीनकर उसने संदूक में पटकी और उस पर ताला टांग दिया। बस तब से बुढ़िया की बाईं आंख फड़कने लगी और मुंह टेढ़ा हो गया।

दिन और सप्ताह गुजरते जा रहे थे, दोन में पानी बहता जा रहा था, पतझड़ के तेज बहाव में वह सदा की तरह स्वच्छ और पारदर्शी हरा था।

उस दिन दोन के किनारों पर बर्फ जम गई। पीछे छूटे जंगली हंसों की डार गांव के ऊपर से गुजरी। शाम को पड़ोसी का लड़का दौड़ा-दौड़ा गवरीला के पास आया, देव-प्रतिमा के सामने हड़बड़ी में सलीब बनाकर बोला–

"सब ठीक-ठाक है?"

"भगवान की दया है।"

"दादा आपने सुना? प्रोखोर लिखोवीदोव तुर्की से लौटा है। वह आपके पेत्रो की रेजिमेंट ही में तो था!...."

गवरीला खांसी के कारण हांफता जल्दी-जल्दी कदम रखता तेजी से गली में जा रहा था। प्रोखोर घर पर नहीं मिला—वह अपने भाई के गांव गया हुआ था, कल आने की कह गया था।

गवरीला रात भर नहीं सोया। अनिद्रा उसे सता रही थी। पौ फटने से पहले उसने दीया जलाया और नमदे के बूटों पर तलवे टांकने लगा।

भोर के धुंधले प्रभात में उषा की क्षीण लालिमा फूटी। सुबह हो गई पर चंद्रमा आकाश के बीचों-बीच लटका रह गया, शक्ति उसमें इतनी नहीं बची थी कि काली घटा तक जाकर दिन भर को छिप जाए।

नाश्ते से पहले गवरीला खिड़की से झांका, न जाने क्यों वह फुसफुसाकर बोला—

"प्रोखोर आ रहा है!"

प्रोखोर ने घर में प्रवेश किया, वह बिल्कुल भी कज्जाकों जैसा नहीं लग रहा था, पराई वेशभूषा में था। उसके पैरों में नाल जड़े अंग्रेजी बूट चरमरा रहे थे, अजीब-सा ओवरकोट उसके कंधों पर बोरी की तरह लटका था, शायद किसी बेगाने का उतारा था।

"गवरीला वसीलिच, ठीक-ठाक तो हो न!...."

"प्रभु की कृपा है!....आओ, बैठो।"

प्रोखोर ने टोपी उतारी, बुढ़िया का अभिवादन किया और देवप्रतिमाओं के पा वाले कोने में बेंच पर बैठ गया।

"देखो तो, मौसम कैसा हो गया, बर्फ इतनी पड़ी है कि चलना दूभर है!....

"हां, बर्फ इस बार जल्दी पड़ गई....पुराने जमाने में तो इन दिनों ढोर बाहर चरते थे।"

कुछ देर के लिए बोझिल चुप्पी छा गई। देखने में तो गवरीला विरक्त और संतुलित लग रहा था, वह बोला—

"छोरे, परदेस में तो तू बुड्ढा हो गया!"

"जवान होने की कुछ वजह ही नहीं थी गवरीला वसीलिच!" प्रोखोर ने मुस्कराकर उत्तर दिया।

बुढ़िया ने मुंह खोला—

"हमारा पेत्रो...."

"चुप बुढ़िया!...." गवरीला ने सख्ती से उसे डांटा। "आदमी बाहर से आया है, दम तो लेने दे, वक्त आएगा....पूछ लेना!...."

मेहमान की ओर मुड़कर उसने पूछा—

"हां, तो प्रोखोर इग्नातिच, दिन कैसे गुजरे?"

"तारीफ करने लायक कोई बात है नहीं। लंगड़े कुत्ते के मानिंद किसी तरह

घर तक पहुंच गया, यही गनीमत है।"

"यह बात है....मतलब, तुर्कों के यहां मुसीबतें झेलनी पड़ीं?"

"बड़ी मुश्किल से गुजार कर होता था," प्रोखोर ने मेज पर उंगलियों से थाप की और बोला, "तुम भी, गवरीला वसीलिच, काफी बूढ़े हो गए, तुम्हारे सिर के देखो कितने बाल सफेद हो गए....सोवियत सत्ता में आप लोग कैसे रह रहे हैं?"

"बेटे की बाट जोह रहा हूं....बुढ़ापे में हमें सहारा देने के लिए...." गवरीला टेढ़े होंठों से मुस्कराया।

प्रोखोर ने झट से नजरें दूसरी ओर मोड़ लीं। गवरीला ने यह देखकर सख्ती से साफ-साफ सवाल किया—

"बोलो—कहां है पेत्रो?"

"क्या आपने नहीं सुना?"

"तरह-तरह की बातें सुनी हैं," गवरीला चट से बोला।

मेजपोश की मैली झालर को उंगलियों पर लपेटता प्रोखोर कुछ देर तक चुप बैठा रहा।

"शायद जनवरी की बात है....हां-हां, जनवरी की ही है, हमारा रिसाला नोवोरोस्सीस्क के पास पड़ाव डाले हुए था....यह शहर समुंदर के किनारे है....बस पड़ाव डाले हुए थे...."

"क्या मारा गया?...." गवरीला ने झुककर दबे स्वर में फुसफुसाहट के साथ पूछा।

प्रोखोर नजरें झुकाकर कुछ देर चुप रहा, मानो उसने सवाल सुना ही नहीं।

"हम वहां तैनात थे, उधर लाल सेना पहाड़ों की तरफ बढ़ रही थी, हरी सेना से जुड़ने के लिए। आपके प्योत्र को रिसाले के कमांडर ने टोह लेने के लिए भेजा ....कमांडर हमारा था सूबेदार सेनिन....बस तभी यह हुआ...."

अलावघर के पास टन् से देग गिरा, बुढ़िया हाथ फैलाकर पलंग की ओर जाती दिखाई दी, गले से रुलाई फूट रही थी।

"मत चीख!!" गवरीला घुड़ककर चिल्लाया, मेज पर कोहनियां टिकाकर प्रोखोर को एकटक देखता हुआ धीरे-धीरे थके स्वर में बोला—

"पूरी भी कर बात!"

"टुकड़े-टुकड़े कर दिए!...." प्रोखोर चिल्लाकर खड़ा हुआ, उसका चेहरा पीला पड़ गया था, बेंच पर वह अपनी टोपी को टटोलता हुआ बोला। "पेत्रो को जान से मार डाला....वे जंगल के पास रुके थे दम लेने के लिए ताकि घोड़े भी कुछ आराम कर लें, उसने जीन की पेटी ढीली कर दी, उधर जंगल में से लाल सैनिक आ धमके...." जल्दी-जल्दी बोलने के करण प्रोखोर को सांस चढ़ रहा था, कांपते हाथों से वह टोपी को मसल रहा था। "पेत्रो ने जीन की पेटी थामी और जीन

खिसककर घोड़े के पेट पर आ गई....घोड़ा बिदक गया....नहीं संभाल पाया, वहीं रह गया....बस!...."

"अगर मैं तेरी बात पर विश्वास न करूं?...." गवरीला शब्द चबा-चबाकर बोला।

प्रोखोर बिना पलटे जल्दी-जल्दी दरवाजे की ओर चल पड़ा।

"मर्जी आपकी है गवरीला वसीलिच, पर मैंने सच बताया....मैं सच बोल रहा हूं....सिर्फ सच....अपनी आंखों से देखा...."

"अगर मैं इस पर यकीन नहीं करना चाहता?!" गवरीला तमतमाकर बोला। उसकी डबडबाई आंखों में खून उतर आया। कमीज का गरेबान फाड़कर, बालों से ढकी छाती उघाड़कर, आहें भरता हुआ, पसीने से भीगे सिर को झटकता हुआ वह प्रोखोर पर चढ़ गया, जो उसे इस हालत में देखकर सहम गया।

"इकलौते बेटे को मार डाला?! मां-बाप के सहारे को?! मेरे पेत्रो को?! झूठ बोलता है, कुतिया की औलाद!....सुना तूने?! तू झूठ बोलता है! मैं यकीन नहीं करता!...."

पर रात को ओवरकोट पहनकर अहाते में निकला, बर्फ पर नमदे के बूट चरमराता खलिहान में गया और पुआल के ढेर के पास खड़ा हो गया।

स्तेपी से हवा चल रही थी, बर्फ का बुरादा उड़ रहा था, चेरी की नंगी झाड़ियां काले सख्त अंधेरे से लदी हुई थीं।

"बेटा!" गवरीला ने दबे स्वर में पुकारा। कुछ रुककर बिना हिले-डुले, बिना सिर घुमाए फिर आवाज दी, "पेत्रो!.... मेरे बेटे!...."

फिर पुआल के ढेर के पास पैरों से कुचली बर्फ पर चित लेट गया और आंखें मूंद लीं।

गांव में अनाज-वसूली की और दोन के निचले भाग से आने वाले डकैत गिरोहों की बातें उड़ रहीं थीं। कार्यकारिणी समिति में गांव के निवासियों की सभाओं में फुसफुसाकर खबरें सुनाई जाती थीं, पर बूढ़े गवरीला ने एक बार भी कार्यकारिणी समिति की टेढ़ी ड्योढ़ी पर पांव नहीं रखा था, जरूरत नहीं पड़ी, इसलिए उसने बहुत-सी बातें नहीं सुनीं, बहुत कुछ उसे मालूम न था। उसे बड़ा अजीब लगा जब रविवार के दिन गिरजे में दोपहर की प्रार्थना के बाद अध्यक्ष उसके यहां आया। अध्यक्ष के साथ उल्टी खाल के पीले छोटे ओवरकोट पहने तीन राइफलधारी थे।

अध्यक्ष ने गवरीला से हाथ मिलाया और फट से पूछा—

"दादा, कबूल करो—अनाज है तुम्हारे पास?"

"और तुम क्या सोचते थे, हवा से पेट भरते हैं क्या?"

"तुम मजाक मत करो, ठीक से बताओ कहां है अनाज?"

"होगा कहां, बखार में है।"

"चलो।"

"पर यह तो बताओ कि मेरे अनाज से तुम्हारा क्या रिश्ता?"

लंबे कद के, सुनहरे बालों वाले ने जो देखने में उनका मुखिया लगता था, ठंड के कारण बूटों की एड़ियां पटकते हुए कहा—

"राज्य के लिए फालतू अनाज इकट्ठा कर रहे हैं। अनाज-वसूली चल रही है। सुना है, बाबा?"

"पर अगर मैं न दूं?" गवरीला गुस्से में फुफकारकर बोला।

"नहीं दोगे? तो खुद ले लेंगे...."

अध्यक्ष के साथ कानाफूसी करके वे बखार में घुस गए, सुनहरे सांवले, चुने गेहूं पर उनके बूटों से बर्फ के चिथड़े बिखर गए। सुनहरे बालों वाले ने सिगरेट पीते हुए फैसला किया—

"बीज और खाने के लिए छोड़कर बाकी सब वसूल कर लो।" मालिक की नजर से उसने अनाज की मात्रा का अनुमान लगाया और गवरीला की ओर मुड़कर बोला, "कितनी जमीन बोओगे?"

"ठेंगा बोऊंगा!....गवरीला फटी आवाज में, खांसता हुआ बोला। "ले जाओ, पापियो!....लूट लो!....सब तुम्हारा ही तो है!...."

"तुम्हें क्या पागल कुत्ते ने काटा है, होश में आओ, गवरीला दादा!...." अध्यक्ष गवरीला को मनाने लगा।

"पराया माल तुम्हारे गले में अटके!....ठूंसो अपने पेट में!...."

सुनहरे बालों वाले ने अपनी मूंछों पर पिघलती बर्फ को झाड़ा और गवरीला को व्यंग्यपूर्ण अंदाज से आंख मारकर, शांत मुस्कान के साथ बोला—

"बाबा, तुम फुदको मत! चिल्लाने का कोई फायदा नहीं। तुम चूं-चूं क्यों कर रहे हो, क्या किसी ने तुम्हारी दुम पर पैर रख दिया है?...." और भौंहें सिकोड़कर बिल्कुल दूसरे लहजे में बोला, "जबान संभाल!....अगर लंबी है तो काट ले दांतों से!....ऐसे प्रचार के लिए...." बात पूरी किए बिना उसने पेटी से लटके पिस्तौल के पीले खोल पर हाथ मारा और नर्म स्वर में बोला, "आज ही अनाज वसूली केंद्र पहुंचा देना!"

यह बात नहीं थी कि बूढ़ा डर गया, पर दृढ़ और स्पष्ट आवाज से वह सहम गया, समझ गया कि सचमुच, चिल्लाने से कुछ नहीं होगा। हाथ झाड़कर वह घर की ड्योढ़ी की ओर चल पड़ा। उसने अभी आधा आंगन भी पार न किया था कि वह वहशी चीख से सिहर गया—

"कहां है अनाज-वसूली दस्ता?!"

गवरीला ने मुड़कर देखा—टहनियों से बनी बाड़ की दूसरी ओर पिछली टांगों

पर नाचते घोड़े पर घुड़सवार बैठा था। किसी असाधारण घटना के पूर्वाभास से गवरीला के घुटने कांपने लगे। वह मुंह भी न खोल पाया कि घुड़सवार ने बखार के पास खड़े लोगों को देखकर झटके से घोड़े को रोका और पलक झपकते कंधे से रायफल उतार ली।

धांय से गोली चली, गोली चलने के बाद आंगन में छाई क्षणिक नीरवता में रायफल का बोल्ट खटकने की आवाज सुनाई पड़ी और कारतूस का खोल सूं ऽऽ करके गिरा।

स्तब्धता टूट गई—सुनहरे बालों वाला चौखट से चिपक गया, कांपते हाथ से रिवाल्वर को खोल से निकालने में उसे बड़ी देर लग रही थी। अध्यक्ष आंगन में खरगोश की तरह फुटकता हुआ खलिहान की ओर दौड़ पड़ा, अनाज-वसूली दस्ते का एक आदमी बाड़ के पीछे हिलती काली टोपी पर कार्बाइन से गोलियां चलाते हुए घुटने के बल गिर गया। अहाता गोलियों की धांय-धांय से भर गया। मानो बर्फ से चिपके अपने पैर गवरीला ने मुश्किल से उठाए और भारी कदम घसीटता हुआ घर की ड्योढ़ी की ओर चल पड़ा। जब उसने मुड़कर देखा तो उल्टी खाल के कोट पहने तीन जने बिखरकर, बर्फ के ढेरों में फंसते हुए खलिहान की ओर दौड़ रहे थे और बेबाक खुले फाटक में घुड़सवार उमड़ते आ रहे थे।

आगे वाला घुड़सवार कुबानी टोपी पहने था। अपने ललौंहे घोड़े पर झुककर उसने सिर के ऊपर तलवार घुमाई। गवरीला की आंखों के सामने हंस के डैनों की तरह उसके सफेद बाशलिक[1] के सिरे चमके, घोड़े के खुरों से उछली बर्फ के छींटे चेहरे पर पड़े।

निढाल गवरीला नक्काशीदार ड्योढ़ी का सहारा लेकर खड़ा हो गया। उसने देखा कि ललौंहा घोड़ा सिमटा और टहनियों की बाढ़ को फांद गया, जौ की पुआल के ढेर के पास पिछली टांगों पर खड़ा होकर घूमने लगा और कुबानी कज्जाक, जीन से लटककर, घुटनों पर रेंगते अनाज-वसूली दस्ते के आदमी पर तलवार से आड़े-तिरछे वार करने लगा....

खलिहान से अस्पष्ट-सा शोर, हाथापाई की आवाज और किसी का दारुण चीत्कार सुनाई पड़ा। पल भर बाद सिर्फ एक बार धांय की आवाज आई। गोलीबारी से डरकर उड़े कबूतर उस समय बखार की छत पर उतर रहे थे, वे चौंककर आकाश में बैंगनी छर्रों की तरह फैल गए। घुड़सवार खलिहान में अपने घोड़ों से उतर गए।

गांव में निरंतर घंटे-घड़ियाल बज रहे थे। गांव का पगला लड़का पाशा गिरजे के घंटाघर पर चढ़ गया था, वह अपने पगलेपन के कारण खतरे का घंटा बजाने की

---

1. बाशलिक—(तुर्क) लंबे सिरों वाला हुड जो टोपी और मफलर दोनों का काम देता है।

जगह ईस्टर-नृत्य की धुन बजा रहा था।

कंधों पर सफेद बाशलिक डाले कुबानी कज्जाक गवरीला के पास आया। उसका पसीने से गीला तमतमाया चेहरा फड़क रहा था, होंठों के लटके कोने थूक से गीले थे।

"जई है?"

गवरीला कठिनाई के साथ हिला, अभी-अभी उसने जो कुछ देखा था उससे उसकी जबान को मानो लकवा मार गया।

"शैतान की औलाद, क्या तू बहरा हो गया?! पूछा रह हूं, जई है? बोरी ला!"

चारे की नांद के पास घोड़ों को ला भी न पाए थे कि एक और घुड़सवार घोड़े को सरपट दौड़ाता फाटक में घुसा।

"चढ़ो घोड़ों पर!....पहाड़ी से पैदल फ़ौज आ रही है...."

कुबानी कज्जाक ने कोसकर भाप छोड़ते पसीने से तर अपने घोड़े को लगाम पहनाई और बड़ी देर तक अपनी दाईं आस्तीन के कफ को बर्फ से रगड़ता रहा जो सिंदूरी-लाल चीज में सना था।

फाटक से पांच घुड़सवार निकले, पिछले वाले की जीन से बंधे खून के धब्बों से सने उल्टी खाल के पीले ओवरकोट को गवरीला ने पहचान लिया—वह सुनहरे बालों वाले का था।

टीले के पीछे बेर की झाड़ियों वाली घाटी में शाम तक गोलियां चलती रहीं। पिटे कुत्ते की तरह दुम दबाकर सन्नाटा गांव में पसरा पड़ा था। जब गवरीला खलिहान में जाने का साहस जुटा पाया जब तक सांझ का झुटपुटा छा गया था। उसने खुले दरीचे में प्रवेश किया। अध्यक्ष सिर लटकाए खलिहान के बाड़े की बल्ली पर पड़ा था। गोली ने यहीं उसको धराशाई कर दिया था। उसके लटके हाथ, मानो बाड़ की दूसरी ओर गिरी टोपी को उठाने का यत्न कर रहे थे।

पुआल के ढेर के पास, जहां जूठन और भूसी बिखरी पड़ी थीं, बर्फ पर अनाज-वसूली दस्ते के तीनों जने एक पांत में लेटे हुए थे। कच्छे-बनियान के अलावा उनके सारे कपड़े उतरे हुए थे। इस भयंकर दृश्य से दहले गवरीला के दिल में उनके प्रति अब वह क्रोध न रहा, जो सुबह खौल रहा था। यह दुःस्वप्न लगता था कि उसके खलिहान में जहां हमेशा पड़ोसी की बकरियां उत्पात मचाती थीं, पुआल के गठ्ठर में मुंह मारती थीं अब तिनके की तरह कटे तीन लोग पड़े हैं; और उनसे, डबरों में जमे उनके फेनिल खून से अब मुर्दों की हल्की-सी बू फैलने लगी है।....

सुनहरे बालों वाला अस्वाभिक मुद्रा में सिर मोड़े पड़ा था, अगर सिर बर्फ से न चिपका होता तो यह लग सकता था कि वह टांग पर टांग रखकर लेटा हुआ बेफिक्री से आराम कर रहा है।

दूसरा, चेचक के दाग और काली मूंछों वाला, कंधे उचकाकर धनुष की तरह पड़ा था, उसके अधखुले मुंह में चमकते दांतों पर अडिगता और क्रोध का भाव था। तीसरा पुआल में सिर छिपाए बर्फ पर तैराक की मुद्रा में औंधा पड़ा था—उसकी फैली निर्जीव बाहें इतनी शक्तिशाली लगती थीं।

गवरीला सुनहरे बालों वाले के ऊपर झुका, काले पड़े चेहरे का ध्यान से देखकर वह करुणा से सिहर गया—उसके सामने कोई उन्नीसेक बरस का छोकरा पड़ा था, न कि गुस्सैल, कटखनी आंखों वाला खाद्य-कमिसार। मूंछों के पीले रोयों के पास होंठ पर पाला जम रहा था, बस माथे पर आड़ी काली झुर्री थी—गहरी और गंभीर।

गवरीला ने यूं ही हाथ से उसकी नंगी छाती को छुआ। आकस्मिकता ने उसे झिंझोड़ दिया—उसकी हथेली को बर्फीली ठंड में बुझती गर्मी की अनुभूति हुई....

जब कराहता और हांफता गवरीला खून से लथपथ, अकड़े शरीर को पीठ पर लादकर लाया तो बुढ़िया का मुंह खुला का खुला रह गया, वह सलीब बनाते हुए अलावघर के पास हट गई।

गवरीला ने उसे बेंच पर लिटाया, ठंडे पानी से धोया, और मोटे ऊनी मोजे से हाथ, पांव, छाती को तब तक रगड़ता रहा जब तक खुद पसीने से तर होकर निढाल न हो गया। उसने घिनौनी ठंडी छाती से कान लगाया और बड़ी मुश्किल से उसे दिल की धड़कन सुनाई दी, दिल रुक-रुककर धड़क रहा था।

चार दिन से वह मुर्दे की भांति केसरी-पीला कमरे में लेटा था। माथे से लेकर गाल तक तलवार के लाल घाव में खून जम गया था, कसकर पट्टी से बंधी छाती कंबल को ऊपर-नीचे उठाती घर्रघर्र, गुड़गुड़ करती फेफड़ों में हवा भरती थी।

रोज गवरीला उसके मुंह में अपनी फटी, रूखी उंगली डालता, छुरी की नोक से, सावधानी के साथ, उसके भिंचे जबड़ों को खोलता और बुढ़िया सरकंडे की नली से गर्म दूध और भेड़ की हड्डियों की यखनी डालती।

चौथे दिन सुनहरे बालों वाले के गालों पर हल्की-सी लाली छा गई, दोपहर तक उसका चेहरा दहकते अंगारे जैसा लाल हो गया, सारा शरीर कांपने और ठंडा, चिपचिपा पसीना आने लगा।

तब से वह बेहोशी में बड़बड़ाने लगा, पलंग से उठने की कोशिश करने लगा। गवरीला और बुढ़िया दिन-रात बारी-बारी से उसके पास बैठे रहते।

जाड़े की लंबी रातों में जब दोन के दियारे से आती पुरबिया काले आकाश में उथल-पुथल करती गांव के ऊपर ठंडी घटाओं को बिछा देती, गवरीला हाथों पर सिर टिकाकर घायल के पास बैठा अपरिचित बोली में उसकी बड़बड़ाहट को कान लगाकर सुनता; देर-देर तक उसकी काले गड्ढों वाली बंद आंखों की आसमानी पलकों को देखता रहता। और जब बदरंग होंठों से लंबी कराह, फटे स्वर में कोई

फौजी आदेश या भद्दी गाली निकलती और चेहरा क्रोध व दर्द से विकृत हो उठता– गवरीला का दिल पसीज जाता। ऐसे क्षणों में करुणा बिन बुलाए मेहमान की तरह मुंह उठाए आ जाती।

गवरीला देख रहा था कि हर दिन के साथ, बिना पलक मूंदे बिताई गई हर रात के साथ बुढ़िया पलंग के पास बैठी-बैठी सूखती जा रही है। गवरीला ने उसके झुर्रियों से ढके गालों पर आंसू भी बहते देखे थे और वह समझ गया, सच कहा जाए तो अपने दिल से उसने महसूस किया कि भगवान को प्यारे हुए बेटे पेत्रो के प्रति उसके मन में बची ममता इस निर्जीव-से, मौत के मुंह से निकले पराए बेटे को देखकर धधक उठी है।....

एक बार गांव से गुजरती रेजिमेंट का कमांडर आया। घोड़े को फाटक पर ही अर्दली को सौंपकर तलवार और महमेजें खड़काता दौड़कर ड्योढ़ी पर चढ़ गया। कमरे में उसने टोपी उतार दी और बड़ी देर तक घायल के पास मौन खड़ा रहा। घायल के चेहरे पर धुंधली छायाएं तैर रही थीं, बुखार से फटे होंठों से खून रिस रहा था। कमांडर ने समय से पहले सफेद हुए बालों वाला अपना सिर हिलाया और धुंधली आंखों से न जाने किस ओर देखते हुए गवरीला से बोला–

"बाबा, हमारे साथी को बचा लो!"

"बचा लेंगे!" गवरीला ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

दिन और सप्ताह बीतते जा रहे थे। बड़ा दिन गुजर गया। सोलहवें दिन सुनहरे बालों वाले ने पहली बार आंखें खोलीं और गवरीला को अस्फुट स्वर सुनाई पड़ा–

"बाबा, यह तुम हो?"

"हां।"

"मेरी जबर्दस्त हजामत बनाई थी?"

"भगवान किसी की ऐसी न करे!"

उसकी निर्मल, दुर्ग्राह्य नजरों में गवरीला को मासूम कटाक्ष का आभास-सा हुआ।

"और मेरे साथी?"

उन्हें वो....उन्हें चौक पर दफना दिया है।"

उसने कंबल पर टिकी उंगलियां हिलाईं और छत के बिना रंगे तख्तों की ओर आंखें उठा लीं।

"तुम्हारा नाम क्या है?" गवरीला ने पूछा।

नसों से ढकी आसमानी पलकें धीरे-से झुकीं।

"निकोलाई।"

"पर हम तुम्हें पेत्रो कहकर पुकारा करेंगे....हमारा बेटा था....पेत्रो...."

गवरीला ने उसे समझाया।

कुछ सोचकर और किसी चीज के बारे में पूछना चाहता था पर उसे नाक की खर्र-खर्र सुनाई पड़ी और वह बाहें फैलाकर दबे पांव पलंग के पास से हट गया।

उसमें जीवन धीरे-धीरे, मानो अनिच्छा से लौट रहा था। दूसरे महीने में वह बड़ी मुश्किल से अपना सिर तकिए से उठा पाया था, पीठ पर लेटे रहने के कारण चकत्ते पड़ गए थे।

हर दिन के साथ गवरीला को भय के साथ यह अनुभूति होती कि उसे नए पेत्रो से गहरा लगाव होता जा रहा है और पहले, अपने बेटे की छवि उसी तरह धूमिल होती जा रही है जैसे मकान की अभ्रक जड़ी खिड़की पर अस्ताचलगामी सूरज की चमक। वह पहले वाले दुःख और पीड़ा को लौटाने की लाख कोशिश करता पर अतीत दूर, बहुत दूर होता जाता और इससे गवरीला को मन ही मन शर्म आती, अटपटा लगता।....मवेशियों के बाड़े में जाकर घंटों कुछ न कुछ करता रहता पर यह याद करके कि पेत्रो के पलंग के पास बुढ़िया निरंतर बैठी है उसे ईर्ष्या होती। घर में जाकर सिरहने के पास खड़ा हो जाता, अपनी अकड़ी उंगलियों से तकिए का गिलाफ ठीक करता और बुढ़िया की क्रुद्ध नजर को देखकर चुपचाप बेंच पर बैठ जाता।

बुढ़िया पेत्रो को मारमोट की चर्बी और वसंत में जमा की गई जड़ी-बूटियों का काढ़ा पिलाती। इस वजह से या बीमारी पर जवानी की शक्ति के हावी होने के कारण घाव भर गए, भर आए गालों पर लाली छाने लगी, बस दायां हाथ चंगा होने में देर लगा रहा था, क्योंकि घाव के साथ हड्डी भी टूट गई थी—लगता था कि वह बेकार ही हो जाएगा।

फिर भी ईस्टर उपवास के दूसरे सप्ताह पेत्रो पहली बार खुद, किसी की सहायता के बिना, पलंग पर बैठ गया, उसे अपनी शक्ति पर आश्चर्य हो रहा था, बड़ी देर तक वह मुस्कराता रहा, उसे विश्वास नहीं हो रहा था।

रात को, रसोई में अलावघर की टांड़ पर खांसते हुए गवरीला ने फुसफुसाकर पूछा—

"तू सो रही है, बुढ़िया?"

"क्या चाहिए?"

"हमारे वाला तो पैरों पर खड़ा होने की तैयारी कर रहा....कल संदूक से पेत्रो की पतलून निकाल लेना....सारे कपड़े तैयार कर देना....उसके पास पहनने को तो कुछ है नहीं।"

"मैं खुद जाती हूं! कब के निकाल रखे हैं!"

"बड़ी चंट है!....ख़ाल का ओवरकोट तो निकाला नहीं?"

"छोरा क्या ऐसे ही ठंड में घूमेगा भला!"

गवरीला करवटें बदलने लगा, नींद बस आ ही गई थी, पर याद करके उसने विजेता की तरह सिर उठाया–

"और टोपी? टोपी के बारे में तो भूल गई होगी तू बुड्ढी बत्तख?"

"छोड़ो भी मेरा पिंड! सौ बार पास से गुजरे, एक बार तो देख लिया होता, दो दिन से वहां कील पर टंगी है!...."

गवरीला खीजकर खांसा और चुप हो गया।

चंचल वसंत दोन को बर्फ की जकड़ से मुक्त करने लगा। बर्फ काली, भुरभुरी और ऊबड़-खाबड़ हो गई मानो उसमें कीड़े पड़ गए हों। पहाड़ी गंजी हो गई। बर्फ स्तेपी से रेंगकर बीहड़ों और घाटियों में दुबक गई। दोन का दियारा धूप की बाढ़ में डूबा सुप्त था। स्तेपी से आती हवा नागदौन की स्फूर्तिदाई कसैली गंध अपने साथ लाती थी।

मार्च का महीना समाप्त हो रहा था।

"बाबा, आज खड़ा हो जाऊंगा!"

हालांकि गवरीला के घर में आने वाले सभी लाल सैनिक उसके सफेद बालों को देखकर गवरीला को 'बाबा' कहकर ही पुकारते, पर इस बार स्वर में उसे अपनेपन की अनुभूति हुई। उसे शायद ऐसा लगा या फिर वास्तव में ही पेत्रो ने इस शब्द में पुत्र का प्रेम भरा, जो भी हो गवरीला बिल्कुल लाल हो गया, उसे खांसी आ गई और लजाई खुशी को छिपाकर बुदबुदाया–

"तीसरा महीना लग गया तुम्हें लेटे-लेटे....अब तो पेत्रो, उठने का वक्त आ गया!"

पेत्रो गेड़ियों की तरह पैर रखता ड्योढ़ी में निकला और फेफड़ों में घुसे हवा के तेज झोंके से उसका दम घुटते-घुटते बचा। गवरीला उसे पीछे से सहारा दे रहा था और बुढ़िया ड्योढ़ी के पास बेचैन खड़ी अपने आंसुओं को पल्ले से पोंछ रही थी।

बखार के पास से गुजरते हुए धर्म-पुत्र-पेत्रो ने पूछा–

"तब अनाज दे आए थे?"

"दे आया...." गवरीला अनमने में बुदबुदाया।

"बहुत अच्छा किया, बाबा!"

और फिर 'बाबा' शब्द सुनकर गवरीला गद्गद हो गया। रोज पेत्रो बहंगी का सहारा लेकर लंगड़ाता हुआ धीरे-धीरे अहाते में टहलता। गवरीला चाहे जहां होता, खलिहान में, ओसारे में, सब जगह से वह अपने नए बेटे को बेचैन अन्वेषी नजरों से देखता। कहीं ठोकर खाकर गिर न जाए!

आपस में वे कम ही बोलते थे, पर संबंध उनके बीच सरल और मधुर हो गए थे।

उस दिन के कोई दो-एक दिन बाद जब पेत्री पहली बार बाहर निकला था, रात को सोने की तैयारी करते हुए गवरीला ने पूछा—

"बेटे, तुम कहां के हो?"

"उराल से आया हूं।"

"किसान-परिवार के हो?"

"नहीं, मजदूर हूं।"

"क्या मतलब? कोई धंधा करते थे क्या, जैसे मोची या बढ़ई का?"

"नहीं, बाबा, मैं कारखाने में काम करता था। लोहा ढालने के कारखाने में। बचपन से वहीं काम किया।"

"और अनाज वसूल करने कैसे आए?"

"फौज ने भेजा था।"

"तुम क्या उनके कमांडर थे?"

"हां।"

पूछते हुए झिझक हो रही थी पर बातचीत का मकसद तो यही था—

"मतलब यह कि तुम पार्टी के आदमी हो?"

"हां, मैं कम्युनिस्ट हूं।" पेत्रो ने निश्छल मुस्कान के साथ कहा।

और इस निष्कपट मुस्कान के कारण गवरीला को पराया शब्द 'कम्युनिस्ट' अब भयावह नहीं लगा।

बुढ़िया ने मौका देखकर झट से पूछा—

"पेत्रो प्यारे, तुम्हारा परिवार तो है न?"

"कोई नहीं है मेरा!....आसमान में चांद की तरह अकेला हूं!"

"मां-बाप क्या मर गए?"

"बच्चा ही था, कोई सात-एक साल का था....बाप शराबियों की लड़ाई में मारा गया और मां कहीं गुलछर्रे उड़ा रही है...."

"देखो तो कुतिया को! मतलब तुम्हें, नन्हे-से भाग्य के सहारे छोड़ गई?"

"किसी ठेकेदार के साथ भाग गई और मैं कारखाने में पला।"

गवरीला टांड़ से पैर लटकाकर बैठ गया, बड़ी देर तक चुप रहा, फिर एक-एक शब्द को तौलकर धीरे-धीरे बोलने लगा—

"तो बेटे, अगर तुम्हारा कोई रिश्तेदार नहीं तो हमारे पास ही रह जाओ.... हमारा बेटा था, उसी की तरह हम तुम्हें पेत्रो कहकर बुलाते हैं....था बेटा पर न रहा और अब मैं और बुढ़िया, हम दोनों अकेले रह गए हैं....तुम्हारे लिए हमने कितनी मुसीबतें उठाईं, शायद इसी से हमें तुम से लगाव हो गया। चाहे तुम में पराया खून है, पर हमारा दिल तुम्हारे लिए अपने ही बेटे की तरह दुखता है....रह जाओ यहीं! तुम्हारे साथ मिलकर खेती करेंगे, दोन प्रदेश की जमीन बड़ी उपजाऊ है....तुम्हारे

कपड़े-लत्ते बनवा लेंगे, बहू लाएंगे....मैंने तो जितना हो सकता था कर लिया, अब घर-बार तुम ही संभालो। बस तुम हमारे बुढ़ापे का ख्याल रखना, मरने तक दो वक्त की रोटी देते रहना....हमें छोड़कर मत जाना पेत्रो...."

अंगीठी के पीछे से झींगुर की नीरस झंकार सुनाई पड़ रही थी।

हवा से खिड़की के किवाड़ चरमरा रहे थे।

"मैंने और बुढ़िया ने तुम्हारे लिए बहू की खोज शुरू कर दी है!...." गवरीला ने कृत्रिम हर्ष से आंख मारी, पर होंठ कांपे और उन पर करुण मुस्कान आ गई।

पेत्रो टकटकी बांधे ऊबड़-खाबड़ फर्श को देख रहा था, बाएं हाथ की उंगलियों से वह बेंच पर ठक-ठक कर रहा था। रुक-रुककर आती यह ध्वनि व्यथित कर रही थी।

स्पष्टतः वह अपने उत्तर पर विचार कर रहा था। और फैसला करके उसने ठक-ठक बंद की, सिर झटका–

"बाबा, मैं आपके यहां खुशी से रह जाऊंगा, पर खुद देखते हो, मैं ढंग का काम करने लायक रहा नहीं....हाथ मेरा चंगा होने का नाम ही नहीं लेता, साला! पर काम मैं करूंगा जितना हो सकेगा। गर्मी भर यहीं रहूंगा, बाद में देखा जाएगा।"

"और बाद में शायद तुम यहीं हर जाओगे!" गवरीला ने बात पूरी की।

बुढ़िया का चर्खा हर्षोल्लास के साथ तकली पर रोएंदार ऊन को लपेटता हुआ घरघराने लगा।

न मालूम वह थपक-थपककर लोरी सुना रहा था या मजे की जिंदगी का लालच दे रहा था।

वसंत के बाद तपती धूप, स्तेपी की घनी धूल भरे दिन आए। बहुत दिनों के लिए मौसम साफ हो गया। अल्हड़ और तीव्र दोन में ऊंची-ऊंची लहरें उठने लगीं। वसंत की बाढ़ का पानी गांव के छोर के मकानों तक चढ़ आया। दोन के हरित-श्वेत दियारे में फूलते पोपलरों की मधुर सुगंध व्याप्त हो गई, मैदान में जंगली सेबों की झड़ी पंखुड़ियों से ढकी झील उषा की लालिमा की तरह दीप्तिमान थी। रातों में क्षितिज पर बिजलियों की चमक बालाओं की तरह आंख-मिचौली खेलती, रातें भी क्षितिज पर बिजली की घृणिक चमक की तरह छोटी हो गईं। दिन भर के काम के बाद बैलों को आराम नहीं मिल पाता था। ढोर चरागाहों में चरते थे।

हफ्ते भर से गवरीला पेत्रो के साथ स्तेपी में ही रह रहा था वे जुताई करते, हेंगा चलाते, बोवाई करते और रात को छकड़े के नीचे दोनों एक ही ओवरकोट को ओढ़कर सोते। पर गवरीला ने कभी यह नहीं कहा कि नए बेटे ने उसे कितना कसकर अदृश्य सूत्र से बांध लिया है। हंसमुख, कर्मठ सुनहरे बालों वाले ने दिवंगत पेत्रो की छवि को धूमिल कर दिया। उसके बारे में गवरीला अब बहुत कम ही सोचता

था और काम में लगे रहने से सोचने का समय भी नहीं मिलता था।

दिन चोरों की तरह चुपचाप खिसकते जा रहे थे। घास काटने के दिन आ गए।

सुबह से पेत्रो घास काटने की मशीन को ठीक करने में जुटा था। उसने लोहरखाने में उसके ब्लेडों पर धार चढ़ाई और टूटे हिस्सों की जगह नए बनाकर लगा दिए। गवरीला यह देखकर चकित रह गया। सुबह से घास काटने की मशीन में लगा रहा और सांझ ढलने पर कार्यकारिणी के दफ्तर चला गया—किसी सम्मेलन का बुलावा आया था। उसी समय बुढ़िया जो पनघट पर गई थी रास्ते में डाकघर से एक चिट्ठी लाई। लिफाफा पुराना, चीकट था, पता गवरीला का था। लिफाफे पर लिखा था कामरेड निकोलाई कोसीख के लिए।

अनिष्ट की अस्पष्ट-सी अनुभूति के साथ बड़ी देर तक गवरीला कापिंग पेंसिल से चौड़ी लिखावट में लिखे धुंधले अक्षरों वाले लिफाफे को हाथों में पलटता रहा।

वह रोशनी की तरफ करके देखता पर लिफाफा किसी के रहस्य की मुस्तैदी से रक्षा कर रहा था और गवरीला को इस पत्र के प्रति, जिसने जीवन के शांत क्रम को भंग कर दिया, बढ़ते क्रोध की अनुभूति हो रही थी।

मन में विचार कौंधा—फाड़ दूं, पर कुछ सोचकर उसे दे देने का फैसला किया। फाटक पर ही उसने पेत्रो को खबर सुना दी—

"बेटे, तुम्हारे लिए कहीं से चिट्ठी आई है।"

"मेरे लिए?" उसे आश्चर्य हुआ।

"हां, तुम्हारे लिए है। जाओ, पढ़ लो!"

कमरे में बत्ती जलाकर गवरीला पैनी, टोहक निगाहों से, पत्र पढ़ते पेत्रो के खुश चेहरे को देख रहा था। उससे रहा न गया और पूछ बैठा—

"कहां से आई है?"

"उराल से।"

"किसकी है?" बुढ़िया ने कौतूहल के साथ पूछा।

"कारखाने के साथियों की है।"

गवरीला का माथा ठनका।

"क्या लिखते हैं?"

पेत्रो की आंखों में अंधेरा छा गया। अनिच्छा के साथ उसने उत्तर दिया—

"कारखाने में बुला रहे हैं....उसे चालू करना चाहते हैं। सन् सत्रह से रुका पड़ा है।"

"यह कैसे?....मतलब तुम जाओगे?" फटे स्वर में गवरीला ने पूछा।

"पता नहीं...."

पेत्रो सूखकर पीला पड़ गया। रात को गवरीला उसे पलंग पर करवटें बदलते, आहें

भरते सुनता। बहुत सोच-विचार के बाद वह समझ गया कि पेत्रो गांव में नहीं रहेगा, स्तेपी की अछूती श्यामल भूमि की छाती पर हल नहीं चलाएगा। पेत्रो को पाल-पोसकर बड़ा करने वाला कारखाना एक न एक दिन उसे छीन ही लेगा और फिर से काले, मनहूस दिनों का क्रम शुरू हो जाएगा। बस चलता तो गवरीला घृणित कारखाने की ईंट से ईंट बजा देता, उसे मिट्टी में मिला देता ताकि वहां सिर्फ बिच्छू बूटी और जंगली घास ही उगे!....

तीसरे दिन घास की कटाई के समय जब वे दोनों पड़ाव पर पानी पीने आए, पेत्रो बोला—

"बाबा, मैं यहां नहीं रुक सकता! कारखाने में जाऊंगा....वह मुझे बुलाता है, मन में उथल-पुथल करता है...."

"क्या यहां की जिंदगी अच्छी नहीं है?...."

"नहीं, यह बात नहीं....कारखाना अपना है, जब कोल्चाक[1] ने चढ़ाई की तो डेढ़ हफ्ते तक उसकी रक्षा करते रहे, कोल्चाक के लोगों ने बस्ती पर कब्जा करते ही नौ जनों को फांसी दे दी। और अब जो मजदूर फौज से लौटे हैं, फिर से कारखाने को पैरों पर खड़ा कर रहे हैं....वे खुद और उनके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं, पर काम कर रहे हैं....ऐसी हालत में यहां कैसे रह सकता हूं? मेरा जमीर क्या बोलेगा?"

"तुम क्या मदद कर पाओगे? एक हाथ तो तुम्हारा किसी काम का नहीं।"

"बाबा, आप भी अजीब बात करते हैं! वहां एक-एक हाथ अनमोल है!"

"मैं तुम्हें नहीं रोकता। जाओ!...." गवरीला ने खुद को ढाढस देते हुए कहा, "बुढ़िया को मत बताना....कह देना कि लौट आओगे....कुछ दिन रहकर लौट आओगे ....नहीं तो तड़प-तड़पकर मर जाएगी....एक तुम ही तो हमारा सहारा थे...."

आशा की अंतिम किरण बची थी, गवरीला ने फुसफुसाकर, हांफते हुए पूछा—

"क्यों, सचमुच लौट आना। हूं? क्या हमारे बुढ़ापे पर इतना भी तरस नहीं खाओगे, क्यों?"

छकड़ा चूं-चूं कर रहा था, बैल अपनी मौज में चल रहे थे, पहियों से कुचलकर खड़िया मिट्टी खर-खर बिखर रही थी। दोन के किनारे-किनारे बल खाती सड़क चैपल के पास बाईं ओर मुड़ रही थी। मोड़ से कस्बे के गिरजे और बागों की हरियाली दिखाई पड़ रही थी।

गवरीला रास्ते भर बतियाता जा रहा था। वह मुस्कराने की कोशिश करता।

"इस जगह कोई तीन साल पहले लड़कियां दोन में डूब गई थीं। इसीलिए चैपल बना है।" उसने चाबुक की मूठ से चैपल की मनहूस चोटी की ओर इशारा

---

1. एडमिरल कोल्चाक (1874-1920) प्रतिक्रांतिकारी श्वेत सेना का नायक।

किया। "यहीं हम विदा लेंगे। आगे रास्ता नहीं है। पहाड़ी खिसक गई है। यहां से कस्बे तक कोई वेर्स्ता भर की दूरी होगी, धीरे-धीरे पहुंच जाओगे।"

पेत्रो ने पेटी से लटके खाने के झोले को ठीक किया और छकड़े से उतर गया। बड़ी मुश्किल से रुलाई को दबाकर गवरीला ने चाबुक जमीन पर पटका और कांपती बांहें फैलाईं।

"अलविदा, मेरे प्यारे!....तुम्हारे बिना हमारे लिए सूरज डूब जाएगा...." और पीड़ा से विकृत, आंसुओं से भीगे चेहरे को तिरछा करके तीखी, चिल्लाहट भरी आवाज में बोला, "बेटे, खाने की चीजें तो नहीं भूले?....बुढ़िया ने तुम्हारे लिए बनाईं....नहीं भूले?....ठीक है, अलविदा!....बेटे प्यारे, अलविदा!...."

पेत्रो लंगड़ाता हुआ सड़क के संकरे किनारे पर चल पड़ा, वह लगभग दौड़ ही पड़ा था।

"लौट आना!...." छकड़े का सहारा लेकर गवरीला चिल्ला रहा था।

"नहीं लौटूंगा!...." मन में गूंज रहा था।

मोड़ पर आखिरी बार सुनहरे बालों वाला प्यारा सिर चमका, आखिरी बार पेत्रो ने टोपी हिलाई और उस स्थान पर जहां उसका पांव पड़ा, चंचल हवा ने सफेद धूल का गुबार उड़ा दिया।

●●●

नीलाभ स्तेपी

मैं और जखार दादा दोन के किनारे धूप से झुलसे टीले पर जंगली बेर की छाया में लेटे हैं। आकाश में बादलों की घुंघराली शृंखला के पास कत्थई चील मंडरा रही है। चिड़ियों की बीट से चितकबरी बेर की पत्तियों से हमें कोई राहत नहीं मिल रही है। कड़ाके की गर्मी से कान भन्ना रहे हैं। नीचे मंथर-गति से बहती दोन को या पैरों के पास पड़े तरबूज के सूखे-पिचके छिलकों को देखकर मुंह में लसीनी राल भर आती है और इस राल को थूकने में भी आलस्य आता है।

घाटी में सूखती झील के पास भेड़ों का जमघट है। थकी-मांदी वे दुंबे मटका रही हैं, धूल के कारण जोर-जोर से छींक रही हैं। बंध के पास हट्टा-कट्टा मेमना पिछली टांगों पर खड़ा भदमैली भेड़ के थन चूस रहा है। कभी-कभी वह मां के थन को सिर से दबाता है, भेड़ कराह रही है, दोहरी होकर मेमने को दूध पिला रही है, और मुझे लगता है कि उसकी आंखों में व्यथा का भाव है।

जखार दादा मेरे बगल में बैठे हैं। बुनी हुई ऊनी कमीज को उतारकर वह आंखें मिचमिचाते हुए जोड़ों और सिलवटों में टटोल-टटोलकर कुछ ढूंढ़ रहे हैं। दादा की उम्र एक कम पूरे सत्तर है। नंगी पीठ झुर्रियों के विचित्र बेल-बूटों से ढकी है, खाल के नीचे से पखौड़ों की पैनी हड्डियां उभरी हुई हैं, पर स्लेटी भौंहों वाली आंखें—नीली और युवा हैं, दृष्टि चपल और पैनी है।

कमीज में मिले चिल्लड़ को वह बड़ी मुश्किल से अपनी कांपती, रूखी उंगलियों में पकड़े हैं, वह उसे सावधानी से, बड़े प्यार से पकड़े हुए हैं, फिर उसे अपने से दूर, जमीन पर रखकर उन्होंने हवा में सलीब का निशान बनाया और बुदबुदाये—

"रेंग जा यहां से दूर, जानवर! शायद जीना चाहता है न? क्या? वही तो मैं कह रहा हूं....देखो तो सही....जी भरकर खून चूस लिया....जमींदार की तरह...."

कराहकर दादा ने कमीज चढ़ा ली और पीछे की ओर सिर झुकाकर लकड़ी की बोतल से गट-गट गुनगुना पानी पीने लगे। हर घूंट के साथ टेंटुआ ऊपर खिसकता। ठोड़ी से गले तक दो सिलवटें लटकी हैं, दाढ़ी पर बूंदें लुढ़क रही हैं, अधखुली केसरी पलकों से छनकर धूप लाल हो गई है।

बोतल में डाट लगाते हुए उन्होंने मेरी ओर तिरछी नजर डाली, नजरें मिलने पर उन्होंने होंठ चबाए और स्तेपी को देखने लगे। घाटी के उस पार धुंध की तरह मरीचिका व्याप्त है, तपती धरती पर बहती हवा में थाइम के मधु की मादक गंध बसी

है। दादा ने चुपचाप गड़रियों की हंकनी एक तरफ उठाकर रखी और धूम्रपान से पीली उंगली से इशारा करके बोले–

"देख रहे हो इस बीहड़ के उस पार सफेदों की फुनगियां? तोमीलिन खानदान की जागीर–तोपोल्योव्का है। वहीं पास ही में किसानों की बस्ती तोपोल्योव्का है, पहले वे भू-दास थे। मेरा बाप अपनी जिंदगी के आखिरी दिन तक जागीरदार का कोचवान रहा। जब मैं छोकरा था पिता ने मुझे बताया था कि मालिक येवग्राफ तोमीलिन ने पालतू सारस के बदले में उन्हें पड़ोसी जमींदार से लिया था। पिता की मौत के बाद मैं उनकी जगह कोचवान का काम करने लगा। मालिक की उम्र तब साठ के करीब थी। बड़ा हट्टा-कट्टा था। जवानी में जार की गारद में था, फिर नौकरी छोड़कर दोन के इलाके में बाकी दिन गुजारने आ गया। दोन के इलाके में उनकी जमीन कज्जाकों ने दबा ली, और सरकार ने मालिक को सरातोव प्रांत में तीन हजार देस्यातीना[1] जमीन बख्श दी। यह जमीन वह सरातोव के किसानों को बंटाई पर चढ़ाता था और खुद तोपोल्योव्का में रहता था।

"बड़ा अजीब आदमी था। हमेशा बढ़िया ऊनी अंगरखा पहनकर और कटार लटकाकर घूमता था। जब कहीं जाना होता तो जैसे ही हम तोपोल्योव्का के बाहर निकलते, हुक्म देता–

"दौड़ा, हरामी!'

"मैं चाबुक चलाता। घोड़े सरपट दौड़ने लगते, तेज हवा आंखों से बहते पानी को न सुखा पाती। रास्ता ऊबड़-खाबड़ होता–बसंत की बाढ़ से वह जगह-जगह कट जाता–अगले पहिए तो फटाक से निकल जाते, पर पिछले धम्म से उछलते। आधा मील आगे चले जाते तो मालिक चिल्लाता, 'मोड़ पीछे!' मैं उल्टा मोड़ता और पूरी रफ्तार से उस कटाव की ओर दौड़ पड़ते....दो-तीन बार उस मरदुए कटाव को पार करते, जब तक कमानी न टूट जाती या बग्घी के पहिए न उखड़ जाते। तब मेरा मालिक बड़बड़ाकर उठता और पैदल चल पड़ता, और मैं पीछे-पीछे लगाम थामे घोड़ों को लिए जाता। मनबहलाव का उसका एक तरीका यह था–जागीर से हम बाहर निकलते और वह मेरे पास कोचवान की सीट पर आ बैठता, मेरे हाथ से चाबुक छीनकर कहता, 'बीच वाले को दौड़ा!....' मैं बीच वाले घोड़े को दौड़ाता और वह बगल वाले पर चाबुक चलाता। बग्घी में तीन घोड़े होते थे, बगलों में दोन की खालिस नस्ल के घोड़े जोते जाते थे, वे सांप की तरह बल खाकर जमीन पर सिर लटका देते थे।

"और वह उनमें से किसी एक पर चाबुक चलाता, बिचारा झाग से ढक जाता ....फिर मालिक कटार निकालता, और झुककर, जैसे बाल को उस्तरे से काटते हैं

1. देस्यातीना–पुराना रूसी माप। 1 देस्यातीना लगभग 2, 7 एकड़ के बराबर था।

वैसे ही जोत काट देता। घोड़ा दो-एक फर्लांग तक ताबड़तोड़ दौड़ा जाता, और धम्म से ढह जाता, नथुनों से खून की धारा फूट पड़ती—हो गया काम तमाम!....दूसरे का भी यही हाल होता....बीच वाला घोड़ा भी जब तक निढाल नहीं हो जाता तब तक दौड़ता रहता, मालिक को क्या परवाह, बस उसका मन बहल जाता, गालों पर लाली छा जाती।

"कभी भी आखिर तक सवारी में नहीं गया—या तो बग्घी तुड़वा देता या घोड़ों को मरवा देता, और बाद में पैदल जाता....बड़े मजे का था मालिक....बीती बात हो गई है, भगवान् हमारा फैसला करे....उसे मेरी लुगाई का चस्का पड़ गया, वह घर में नौकरानी थी। वह नौकरों के कमरे में दौड़ी आती, शमीज चिथड़े-चिथड़े होती—फूट-फूटकर रोती। देखता क्या हूं, छातियां उसकी दांतों से कटी हुई हैं, खाल चिथड़ों की तरह लटकी है....एक बार की बात है रात को मालिक ने मुझे कंपाउंडर को बुलाने भेजा। मैं तो जानता था कि इसकी कोई जरूरत नहीं है, समझ गया कि बात क्या है, स्तेपी में रात घिरने का इंतजार करके लौट आया। हवेली में खलिहान की तरफ से घुसा, घोड़ों को बाग में छोड़कर मैंने चाबुक संभाला और अपनी कोठरी की ओर चल पड़ा। दरवाजा खोला, दियासलाई जान-बूझकर नहीं जलाई, सुनता हूं कि पलंग पर उथल-पुथल हो रही है....जैसे ही मेरा मालिक उठा, मैंने उसे चाबुक मारा, और मेरे चाबुक के सिरे में सीसा भरा था....सुनता हूं कि वह खिड़की की ओर रास्ता बना रहा है, मैंने अंधेरे में एक बार और उसके माथे पर वार किया। वह खिड़की से कूदकर भाग गया, मैंने लुगाई की थोड़ी पिटाई की और सो गया। कोई पांचेक दिन बाद हम कस्बे को जा रहे थे, मैं बग्घी पर धुस्सा तान रहा था, मालिक ने मेरा चाबुक उठाया और हाथों में घुमा-घुमाकर उसके सिरे की जांच करने लगा, जब उसने सीसे को टटोला तो पूछने लगा—

" 'कुत्ते की औलाद, तूने चाबुक में सीसा क्यों सी रखा है?'

" 'आप हीं ने तो हुक्म दिया था,' मैंने जवाब दिया।

"वह कुछ नहीं बोला, सारे रास्ते पहले कटाव तक दांत भींचकर सीटी बजाता रहा, मैं पल भर के लिए मुड़ा तो देखता हूं—बालों ने माथा ढक रखा है और छज्जेदार टोपी काफी झुकी हुई है....

"दो-एक साल बाद उसे फालिज पड़ गया। उसे उस्त-मेद्वेदित्सा ले जाया गया, ढेरों डॉक्टर बुलवाए गए, और वह फर्श पर पड़ा था, शरीर सारा काला पड़ गया। जेब से नोटों की गड्डियां निकालकर पटक दीं, गला फाड़कर चिल्लाने लगा, 'इलाज करो, हरामियो! सब दे दूंगा तुम्हें!....

"बस पैसे के साथ भगवान को प्यारा हो गया। बेटा वारिस रह गया, फौजी अफसर था। जब छोटा था तो जिंदा पिल्लों की खाल उतारकर उन्हें छोड़ देता था। बाप मर गया था। पर जब बड़ा हो गया तो ऐसी आदतें छोड़ दीं। लंबे कद का

पतला-दुबला था, बचपन से ही लुगाइयों की तरह उसकी आंखों के नीचे काले गड्ढे थे....नाक पर सुनहरा चश्मा चढ़ाए रहता था, चश्मा फीते वाला था। जर्मनों से लड़ाई के वक्त साइबेरिया में युद्धबंदियों का अफसर था, और तख्ता-पलट के बाद हमारे इलाके में आ गया। तब तक मेरे पोते बड़े हो चुके थे, बेटा तो भगवान तो प्यारा हो गया था। बड़े पोते सेम्योन की शादी कर दी थी और अनिकेई अभी मटरगश्ती कर रहा था। बस उनके साथ रहता, अपनी जिंदगी के दिन गुजार रहा था....बसंत में फिर सत्ता पलट गई। हमारे किसानों ने जवान मालिक को जागीर से निकाल दिया, उसी दिन सभा में सेम्योन किसानों को जागीरदार की जमीन आपस में बांटने और उसका माल-असबाब अपने-अपने घर ले जाने के लिए मनाने लगा। बस यही कर दिया गया—सामान घरों में चला गया, जमीन बांट दी गई और जुताई शुरू हो गई। एक हफ्ते बाद, शायद इससे भी जल्दी, अफवाह उड़ती-उड़ती पहुंची कि जागीरदार कज्जाकों के साथ हमारी बस्ती में मार-काट करने आ रहा है। हमने फौरन दो छकड़े स्टेशन पर भेज दिए हथियार लाने के लिए। ईस्टर के हफ्ते लाल गार्ड से हथियार ले आए, तोपोल्योव्का के बाहर खंदकें खोद ली गईं। जागीरदार के जोहड़ तक खोद लीं।

"उधर देख रहे हो जहां थाइम चारों ओर उग रहा है, इस बीहड़ की दूसरी ओर ही तोपोल्योव्का वाले खंदकों में लेट गए। वहां मेरे सेम्योन और अनिकेई भी थे। सुबह से लुगाइयां उन्हें खाना-पीना दे आई थीं, जैसे ही सूरज चढ़ा—टीले पर घुड़सवार नजर आए। छितरकर उन्होंने चढ़ाई की तैयारी की, तलवारें चमकने लगीं। खलिहान से मैंने देखा कि आगे वाले ने, जो सफेद घोड़े पर सवार था, तलवार हिलाई और घुड़सवार शोर-शराबे के साथ टीले से नीचे आने लगे। सफेद घोड़े की चाल से मैंने जागीरदार के घोड़े को पहचान लिया, और घोड़े से सवार को भी पहचान लिया.... दो बार हमारे लोगों ने उन्हें खदेड़ दिया, पर तीसरी बार कज्जाकों ने घूमकर पीछे से हमला किया, चालाकी से काम लेकर, और ऐसी मार-काट हुई....दिन ढलते लड़ाई खत्म हो गई। मैं घर से बाहर निकला, देखता हूं—घुड़सवार हवेली की ओर लोगों के झुंड को हांककर ले जा रहे हैं। मैंने लाठी उठाई और उस ओर चल पड़ा।

"अहाते में हमारे तोपोल्योव्का वाले झुंड में सिमटकर खड़े थे, वैसे ही जैसे ये भेड़ें। चारों ओर कज्जाक थे....मैंने पास जाकर पूछा—

" 'भाइयो, मेरे पोते कहां हैं?'

"दोनों ने मुझे भीड़ से पुकारा। हमने आपस में कुछ देर बातचीत की; देखता हूं कि जागीरदार ड्योढ़ी से निकला। मुझे देखकर चिल्लाया—

" 'यह तुम हो जखार दादा?'

" 'जी हुजूर!'

" 'क्यों आए हो?"

''ड्योढ़ी के पास जाकर मैं घुटनों के बल खड़ा हो गया।

'' 'पोतों को मुसीबत से बचाने आया हूं। मालिक, दया करो! जिंदगी भर आपके पिताजी की सेवा की, भगवान उनकी आत्मा को शांति दे, मालिक, मेरी लगन को याद करो, मेरे बुढ़ापे का लिहाज करो!....''

''वह बोला—

'' 'देखो, जखार दादा, मैं अपने पिताजी की सेवा के लिए तुम्हारा बहुत लिहाज करता हूं, पर तुम्हारे पोतों को नहीं छोड़ सकता। वे असली बागी हैं। दादा समझा लो अपने मन को।'

''मैं उसकी टांगों से लिपट गया, ड्योढ़ी में रेंगने लगा।

'' 'मालिक, दया कर! मेरे प्यारे, याद कर कैसे दादा जखार तेरी खिदमत करता था, रहम कर, मेरे सेम्योन का तो दूध पीता बच्चा है!'

''उसने खुशबूदार सिगरेट सुलगाई, धुआं छोड़कर बोला—

'' 'जा, उन हरामजादों से कह कि मेरे कमरे में आएं; अगर माफी मांगेंगे तो ठीक है, पिताजी की याद की खातिर उन्हें कोड़े लगवाकर अपने दस्ते में भर्ती कर लूंगा। क्या पता, अपनी लगन से वे अपने शर्मनाक कुसूर का पछतावा कर लें।'

''मैं दौड़ा-दौड़ा अहाते में गया, पोतों को बतलाया और आस्तीनों से पकड़कर उन्हें खींचने लगा—

'' 'जाओ, बेवकूफो, जब तक माफ न कर दें जमीन पर लेटे रहना!'

''सेम्योन ने सिर तक नहीं उठाया। उकड़ूं बैठा तिनके से मिट्टी कुरेदता रहा। अनिकेई मुझे घूरता रहा और फिर चिल्लाकर बोला—

'' 'जा, अपने मालिक से कह दे कि जखार दादा जिंदगी भर घुटनों के बल रेंगत रहा, और उसका बेटा भी, पर पोते अब यह नहीं चाहते। जाओ यही बता दो उसे!'

'' 'नहीं जाएगा, कुतिया के पिल्ले?'

'' 'नहीं जाऊंगा!'

'' 'तेरे लिए, हरामी, जीने-मरने का मोल कौड़ी भर का है पर सेम्योन को कहां फंसा रहा है? अपनी लुगाई और बच्चे को किस पर छोड़ेगा?'

''देखता हूं कि सेम्योन के हाथ कांप उठे, चुपचाप तिनके से जमीन कुरेदता जा रहा है, न जाने क्या ढूंढ़ रहा है। बैल की तरह चुप है।

'' 'जाओ दादा, हमें मत सताओ,' अनिकेई ने मिन्नत की।

'' 'नहीं जाऊंगा, शैतान की दुम! अगर कुछ हो गया तो सेम्योन की अनीसिया न जाने क्या कर बैठे!....'

''सेम्योन के हाथ का तिनका चट से टूट गया।

''मैं इंतजार करने लगा। पर वे फिर चुप।

" 'सेम्योन प्यारे, होश में आ, मेरे पालनहार! जा मालिक के पास।'

" 'आ गए होश में! नहीं जाएंगे! जा तू रेंगकर!' गुस्से में अनिकेई बोला।

"मैंने कहा–

" 'तू मुझे यह उलाहना दे रहा है कि जागीरदार के सामने मैंने घुटने टेके? तो क्या हुआ, मैं बुड्ढ़ा हूं, मां की चूची की जगह मैंने जागीरदार का चाबुक चूसा ....अपने पोतों के सामने घुटने टेकते हुए भी मैं नहीं शर्माऊंगा।'

"घुटनों के बल खड़ा हो गया, जमीन पर सिर पटक-पटककर बिनती करने लगा। किसानों ने मुंह फेर लिया मानो कुछ देख ही न रहे हों।

" 'जाओ दादा....जाओ, नहीं तो मार डालूंगा!' अनिकेई चिल्लाया, उसके होंठों पर झाग आ गया, आंखों में फंदे में फंसे भेड़िए की तरह वहशी चमक थी।

"मैं उल्टे पांव जागीरदार के पास गया। उसकी टांगों से लिपट गया, हाथ जड़ हो गए, मुंह से कोई बोल न निकले। उसने पूछा–

" 'कहां हैं पोते?'

" 'मालिक, डरते हैं....'

" 'अच्छा, डरते हैं....' और कुछन नहीं बोला। बूंट से सीधे मेरे मुंह में ठोकर मारी और ड्योढ़ी में चला गया।"

जखार दादा हांफने लगे, पल भर के लिए उनका चेहरा पिचककर सफेद पड़ गया; बड़ी कठिनाई से उन्होंने बुढ़ापे की रुलाई को दबाया। सूखे होंठों को हथेली से पोंछकर उन्होंने मुंह मोड़ लिया। दूरी पर, झील के उस पार डैने तिरछे फैलाकर चील घास से टकराई और झपट्टा मारकर उसने सफेद छाती वाली सोहन चिड़िया को हवा में उठाया। बर्फ के गालों की तरह पर बिखर गए, घास पर पड़े वे ऐसे चमक रहे थे कि उनको देखकर आंखों में असहनीय चौंध होती। जखार दादा ने नाक सिनकी और उंगलियों को कमीज के किनारे से पोंछकर फिर बताने लगे–

"मैं भी पीछे-पीछे ड्योढ़ी पर चला गया, देखता हूं कि सेम्योन की अनीसिया बच्चे को गोद में लिए दौड़ी आ रही है। इस चील की तरह ही वह पति से टकराई और उसकी बांहें में लटक गई....

"जागीरदार ने सार्जेंट-मेजर को बुलाया, सेम्योन और अनिकेई की ओर इशारा किया। सार्जेंट-मेजर और छः कज्जाक उन्हें पकड़कर हवेली के पिछवाड़े में ले चले। मैं पीछे-पीछे चल पड़ा और अनीसिया बच्चे को अहाते में पटककर जागीरदार के पीछे-पीछे रेंगने लगी। सेम्योन सबसे आगे तेजी से चल रहा था, अस्तबल के पास जाकर वह बैठ गया।

" 'तू क्या कर रहा है?' जागीरदार ने पूछा।

" 'बूट काट रहे हैं, नहीं सहा जा रहा।' 'और मुस्कराने लगा।

"बूट उतारकर मुझे देते हुए बोला–

“ ‘दादा, जी भरकर पहनो। दोहरे तलवे के हैं, अच्छी हालत में हैं।’

“मैंने बूट ले लिए और फिर चल पड़े। चहारदीवारी के पास पहुंचे। टहनियों से बनी बाड़ के पास उन्हें खड़ा कर दिया। कज्जाक बंदूकों में गोलियां भरने लगे, जागीरदार पास ही में खड़ा छोटी-सी कैंची से नाखून काट रहा था, उसका हाथ गोरा-चिट्टा था। मैं उससे बोला–

“ ‘मालिक, इन्हें कपड़े उतारने दीजिए। कपड़े अच्छे-खासे हैं, हम गरीबों के काम आ जाएंगे।’

“ ‘उतारने दो।’

“अनिदेई ने पतलून उतारी, उसे उल्टा करके बाड़ के खूंटे पर टांग दिया। जेब से तंबाकू की थैली निकाली, सिगरेट जलाई, पैर चौड़े करके धुएं के छल्ले छोड़ने लगा, बाड़ के पार थूकने लगा....सेम्योन ने पूरे कपड़े उतार डाले, सूती जांघिया तक, पर टोपी उतारना भूल गया–शायद मति मारी गई....मेरे शरीर में कभी झुरझुरी फैल जाती, कभी आग-सी लगने लगती। अपना सिर छूता तो चश्मे के पानी की तरह ठंडा पसीना बहता मिलता....देखता हूं–दोनों पास-पास खड़े हैं....सेम्योन की पूरी छाती घने बालों से ढकी थी, नंग-धड़ंग, पर सिर पर टोपी है....अनीसिया अपने पति को बिल्कुल नंगा, सिर्फ टोपी पहने देखकर, दौड़कर उससे चिपट गई जैसे बेल पेड़ से लिपट जाती है। सेम्योन उसे धक्का देकर हटाने लगा।

“ ‘जा यहां से, छिनाल!....होश में आ, यहां इतने लोग हैं!....क्या सूझी है तुझे, देखती नहीं कि मैं एकदम नंगा हूं....शर्म आती है....’

“अनीसिया ने अपने बाल बिखेर लिए और बस यही चिल्लाने लगी–

“ ‘हम दोनों को गोली मार डालो!....’

“जागीरदार ने कैंची जेब में रखकर पूछा–

“ ‘मारूं गोली?’

“ ‘मार, पापी!....’

“जागीरदार से इस तरह बोली!

“ ‘बांध दो इसे खसम के साथ,’ उसने हुक्म दिया।

“अनीसिया चेती और पीछे हटने लगी पर बात बिगड़ चुकी थी। कज्जाकों ने हंसते हुए उसे बागडोर से सेम्योन के साथ बांध दिया....पगली, जमीन पर ढह गई और घर वाले को भी साथ गिरा दिया....जागीरदार ने पास जाकर दांत भींचकर पूछा–

“ ‘क्या बच्चे की खातिर माफी-वाफी नहीं मांगना चाहता?’

“ ‘मांग लूंगा,’ सेम्योन कराहकर बोला।

“ ‘कोई बात नहीं, अब मांग लेना भगवान से....मुझसे मांगने में देर कर दी!....’

"जमीन पर पड़े-पड़े ही दोनों को गोली मार दी....अनिकेई गोली लगने पर लड़खड़ाया पर फौरन गिरा नहीं। पहले घुटनों पर गिरा और फिर झटके से पीछे लेट गया, मुंह ऊपर था। जागीरदार ने उसके पास जाकर बड़े स्नेह से पूछा—

" 'जीना चाहता है? अगर चाहता है तो माफी मांग। चल, पचास कोड़े लगवाकर मोर्चे पर भेज दूंगा।'

"अनिकेई ने मुंह में थूक भरा पर थूकने की शक्ति नहीं बची थी, थूक बस दाढ़ी पर बहकर रह गया....गुस्से से चेहरा फक पड़ गया, पर कर क्या पाता, तीन गोलियां उसे बींध चुकी थीं....

" 'इसे सड़क पर फेंक दो!' जागीरदार ने आदेश दिया।

"कज्जाक उसे घसीटकर ले गए और बाड़ के ऊपर से सड़क पर फेंक दिया। उसी समय तोपोल्योव्का से कज्जाकों का रिसाला कस्बे को जा रहा था, उनके साथ दो तोपें भी थीं। जागीरदार मुर्गे की तरह फुदककर बाड़ पर चढ़ गया और जोर से चिल्लाया—

" 'तोप वाले, घोड़ों को सरपट दौड़ाते ले जाओ, बचाकर मत जाना!....'

"मेरे रोंगटे खड़े हो गए। हाथों में सेम्योन के कपड़े और बूट पकड़े था, पर टांगें मुड़ी जा रही थीं....घोड़ों में दैवी शक्ति होती है, एक ने भी अनिकेई पर पैर नहीं रखा, कूदकर उसे पारकर रहे थे....मैं टहनियों की बाड़ से चिपक गया, आंखें नहीं बंद कर पा रहा था, मुंह सूख गया था....तोप के पहिए अनिकेई की टांगों पर चढ़े ....वे कुरकुराईं जैसे दांतों में पापड़, तिनकों की तरह कुचल गईं....सोचा अनिकेई भयंकर पीड़ा से मर जाएगा, पर वह चिल्लाया तक नहीं, उफ तक न निकली उसके मुंह से....सिर पूरे जोर से जमीन से सटाए पड़ा हुआ था, मुट्ठी भर-भरकर सड़क की मिट्टी मुंह में ठूंस रहा था....मिट्टी चबाते हुए जागीरदार को अपलक देख रहा था और आंखें उसकी स्पष्ट, निर्मल थीं, आकाश की तरह....

"जागीरदार तोमीलिन ने उस दिन बत्तीस जनों को गोलियों से भुनवा दिया। बस अकेला अनिकेई ही जिंदा बच गया अपने गर्व के कारण...."

जखार दादा बड़ी देर तक बोलत से गटगट पानी पीते रहे। बदरंग होंठों को पोंछकर उन्होंने अनमने ढंग से किस्सा पूरा किया—

"गई-बीती बात हो चुकी है। बस खंदकें ही बची हैं जिनमें हमारे किसानों ने अपने लिए जमीन जीती। उनमें अब घास और झाड़ियां उगती हैं....अनिकेई के पैर काट दिए गए, अब वह हाथों के बल चलता है धड़ को जमीन पर घसीट-घसीटकर। देखने में बड़ा हंसमुख है, सेम्योन के छोकरे के साथ दरवाजे की चौखट में रोज कद नापता है। छोकरा तो उससे लंबा हो ही जाएगा....सर्दियों में गली में निकल जाता, लोग ढोरों को नदी पर पानी पिलाने के लिए हांकते और वह हाथ उठाकर रास्ते में बैठ जाता....बैल बिदककर नदी पर जमी बर्फ पर भाग जाते, वहां फिसल-फिसलकर

बेहाल हो जाते और वह हंसता रहता....एक बार की बात है....बसंत में हमारे कम्यून का ट्रैक्टर खेत जोत रहा था, बस वह भी चल पड़ा उस तरफ। मैं वहीं पास में भेड़ें चरा रहा था। देखता क्या हूं कि मेरा अनिकेई जुते खेत में रेंग रहा है। सोचने लगा कि वह क्या करना चाहता है? और देखता हूं कि अनिकेई ने चारों ओर नजर दौड़ाई, आसपास कोई उसे दिखाई नहीं दिया, उसने जमीन से अपना चेहरा सटा लिया, हल के फाल से पलटे मिट्टी के लौंदे से कसकर लिपट गया, उसे सहलाने, चूमने लगा ....उसे पच्चीसवां लग गया है, पर जमीन कभी नहीं जोत पाएगा....बस यही दुख उसे सताता है....''

धुंधली सांझ में नीलाभ स्तेपी ऊंघ रही थी, थाइम के झड़ते फूलों से मधुमक्खियां उस दिन के लिए आखिरी बार पराग बटोर रही थीं।

रुपहली और घनी फैदर घास घमंड के साथ अपनी कलगीदार बालियां हिला रही थी। भेड़ों का रेवड़ तेपोल्योव्का की ओर ढलान पर उतर रहा था। जखार दादा हंकनी का सहारा लेते हुए चुपचाप चल रहे थे। धूल से ढके रास्ते पर चिह्नों की रेखाएं दिखाई दे रही थीं—एक भेड़िए का था—कदम-ब-कदम, फैले पंजे; दूसरा—तोपोल्योव्का के ट्रैक्टर के धारीदार पहियों का।

जहां कच्चा रास्ता पुराने जमाने के, घास-फूस ढके राजमार्ग से मिलता है, चिह्न भिन्न दिशाओं में जा रहे थे। भेड़िए के जंगली घास और कांटेदार झाड़ियों की दुर्गम हरियाली में डूबे बीहड़ों की ओर मुड़ गए और रास्ते पर मिट्टी के तेल की बू छोड़ता एक गहरा और अनवरत चिह्न रह गया।

बछेड़ा

दिन-दहाड़े, हरी मक्खियों से ढके लीद के ढेर के पास, अगली टांगों को पसारे, सिर के बल वह अपनी मां की कोख से निकला। जन्म लेते ही उसे किरच गोले के विस्फोट का नीला-सुरमई पुंज दिखाई पड़ा। धमाके ने उसकी नम काया को मां की टांगों के बीच पटक दिया। संत्रास-यहां, धरती पर यही उसकी प्रथम अनुभूति थी। अस्तबल की खपरैल वाली छत और जमीन पर ओलों की तरह, बदबूदार छर्रे बरसे। बछेड़े की मां—त्रोफीम की लाखी घोड़ी—डर के मारे फुदकी और फिर हिनहिनाकर उसने पसीने से तर अपनी बगल को लीद के सुरक्षादाई ढेर पर टिका दिया।

तपिश भरी नीरवता में मक्खियों की भिनभिनाहट साफ सुनाई पड़ रही थी। तोप की गोलाबारी के डर से कहीं घनी घास में दुबके मुर्गे ने डैने फड़फड़ाकर, निःसंकोच परंतु फटे-फटे स्वर में बांग दी। घर के भीतर से घायल मशीनगनर का करुण क्रंदन सुनाई पड़ रहा था। कभी-कभी वह तीखे, फटे स्वर में चिल्लाता, बीच-बीच में चुन-चुनकर गालियां जड़ देता। फुलवारी में पोस्त के सिंदूरी मखमली फूलों पर मधुमक्खियां गुंजार कर रही थीं। गांव के बाहर मैदान में मशीनगन दनादन गोलियां बरसा रही थी, उसकी उत्साहवर्द्धक तड़-तड़ की पृष्ठभूमि में, पहले और दूसरे गोले के बीच के अंतराल में लाखी घोड़ी ने ममता के साथ अपने नवजात शावक को चाटा। मां के फूले थन से चिपककर उसे पहली बार जीवन के आनंद और मां के स्नेह की अनंत मिठास की अनुभूति हुई।

जब खलिहान के पीछे कहीं गिरकर दूसरा गोला फटा, त्रोफीम भड़ाक से मकान का दरवाजा खोलकर निकला और अस्तबल की ओर चल पड़ा। लीद के ढेर से बचता हुआ वह धूप की चौंध के कारण आंखों के ऊपर हथेली का छज्जा बनाकर चल रहा था। यह देखकर कि तनाव से फुदकता बछेड़ा घोड़ी का थन चूस रहा है वह सकपका गया, उसने जेबों में हाथ डाला और कांपती उंगलियों से तंबाकू की थैली निकाली, कागज में तंबाकू लपेटकर उसने सिगरेट बनाई और उसकी बोलती लौट आई—

"आ....हा....मतलब ब्याह गई? तू ने भी खूब वक्त चुना इसके लिए।" त्रोफीम के इस वाक्य में कटु निराशा का भाव झलका।

घोड़ी की पसीना सूखने से खुरदरी हुई बगलों पर घास के तिनके और सूखी लीद चिपकी हुई थी। वह बेहद दुबली लग रही थी पर आंखों से थकान मिश्रित गर्वोल्लास टपक रहा था और ऊपर वाले मखमली होंठ पर मुस्कान फैली थी। ऊपर

से कम त्रोफीम को तो यही लगा। त्रोफीम ने घोड़ी को अस्तबल में बांध दिया, गर्दन पर टंगे अनाज के झोले को हिलाते हुए वह फुफकारी। चौखट से टिककर त्रोफीम ने बछेड़े की ओर तिरछी नजर डाली और सख्त आवाज में पूछा–

"उड़ा ली मौज?"

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह बोला–

"कम से कम इग्नात के घोड़े जैसा ही जनती, शैतान जाने किस पर गया है ....बता तो सही, मैं इसका करूं क्या?"

अस्तबल की अंधकारमय नीरवता में अनाज चबने की आवाज आ रही थी, दरवाजे में धूप की तिरछी सुनहरी किरणों का पुंज चमक रहा था। प्रकाश त्रोफीम के बाएं गाल पर पड़ रहा था, उसी ललछौंही मूंछ और दाढ़ी के बाल चमक रहे थे, मुंह को घेरे झुर्रियां टेढ़ी-मेढ़ी काली खाइयों की तरह लग रही थीं। बछेड़ा तिनके जैसी पतली टांगों पर काठ के घोड़े की तरह खड़ा था।

"मार दूं इसे?" तंबाकू मसलने के कारण हरे अंगूठे से बछेड़े की ओर इशारा करके त्रोफीम बोला।

घोड़ी पलक झपकती, अपनी लाल आंखों से मालिक की ओर उपहासपूर्ण नजर से देख रही थी।

स्क्वाड्रन कमांडर के कमरे में उस दिन शाम को निम्न वार्तालाप हुआ–

"मैंने गौर किया कि मेरी घोड़ी बड़ी संभलकर चलने लगी, सरपट नहीं दौड़ती, सांस फूलने लगता उसका। ध्यान से देखा तो वह ग्याभन निकली....इतनी संभलकर रहती कि पूछो मत....बछेड़ा तो कुम्मैत है....बस...." त्रोफीम बता रहा था।

स्क्वाड्रन कमांडर तांबे का मग मुट्ठी में कसकर थामे चाय पी रहा था। उसने मग को ऐसे पकड़ रखा था जैसे कि हमला बोलने से पहले तलवार की मूठ को पकड़े हो। वह उनींदी आंखों से लैंप को ताक रहा था। आग की पीली-सी लौ पर पतंगे मंडरा रहे थे, वे खिड़की से अंदर आते, गर्म चिमनी से झुलसकर गिर जाते और दूसरे उनका स्थान ले लेते।

"....क्या फर्क पड़ता है, चाहे भूरा हो या काला। गोली मार देनी चाहिए। बछेड़े के साथ तो हम बंजारों की तरह लगेंगे।"

"क्या?" हां, मैं भी तो कहता हूं कि बंजारों की तरह लगेंगे। अगर सेना कमांडर आए तब? रेजिमेंट का निरीक्षण करने आएंगे और वह परेड के वक्त दुम हिलाता कुलांचें भरेगा....तब? सारी लाल सेना के सामने हमारी नाक कट जाएगी। समझ नहीं आता त्रोफीम, तुमने यह होने कैसे दिया? गृह-युद्ध जोरों पर है, इधर ऐसी भौंडी हरकतें....यह तो बड़ी शर्म की बात है। साईसों को मेरा कड़ा हुक्म–घोड़ों को घोड़ियों से अलग रखो।"

सुबह त्रोफीम रायफल लिए घर से बाहर निकला। सूरज अभी उगा नहीं था। घास पर गुलाबी ओस बिछी थी। पैदल सेना के बूटों से कुचला, खंदकों से पटा मैदान—दुख की पीड़ा से व्याकुल युवती के चेहरे की तरह लग रहा था। कैंटीन में बावर्ची अपने काम में व्यस्त थे। स्क्वाड्रन कमाडर पसीने से गला पुराना बनियान पहने ड्योढ़ी पर बैठा था। रिवाल्वर की मूठ की उत्साहपूर्वक ठंडक की अभ्यस्त हो चुकी उंगलियां फूहड़ ढंग से भूले-बिसरे, प्रिय काम को याद करते हुए बेंत की पौनी बुन रही थीं। पास से गुजरते हुए त्रोफीम ने कौतूहल के साथ पूछा—

"पौनी बना रहे हैं?"

स्क्वाड्रन कमांडर ने पतली टहली से हत्थी को जोड़ा और दांत भींचकर बुदबुदाया—

"अरे, मकान मालकिन जो है न....कहती रहती है बना दो, बना दो। एक जमाने में इस काम का माहिर था, अब वह बात नहीं रही....ढंग की नहीं बनी।"

"नहीं, बढ़िया है," त्रोफीम ने प्रशंसा की।

स्क्वाड्रन कमांडर ने घुटनों से छीलन को झाड़ते हुए पूछा—

"बछेड़े का काम तमाम करने जा रहे हो?"

त्रोफीम चुपचाप हाथ हिलकर अस्तबल में चला गया।

स्क्वाड्रन कमांडर सिर झुकाए गोली चलने की प्रतीक्षा करने लगा। एक के बाद पल बीतते जा रहे थे, पर गोली चलने की आवाज नहीं सुनाई दी। अस्तबल के पीछे से त्रोफीम प्रकट हुआ, वह झेंपा-झेंपा-सा लग रहा था।

"क्यों, क्या हुआ?"

"लगता है रायफल में कुछ गड़बड़ी है....टोपी पर हथोड़ा नहीं पड़ रहा।"

"जरा दिखाना, रायफल।"

त्रोफीम ने अनिच्छा के साथ दी। बोल्ट हटाकर स्क्वाड्रन कमांडर ने आंखें मिचमिचायी।

"अरे, इसमें तो गोली ही नहीं है!...."

"कैसे नहीं है!...." त्रोफीम चिहुंककर बोला।

"मैं कह रहा हूं, नहीं है।"

"अरे हां, मैंने तो उन्हें वहां....अस्तबल के पीछे फेंक दिया...."

स्क्वाड्रन कमांडर ने रायफल को बगल में रख दिया और बड़ी देर तक हाथ में नई पौनी को उलट-पलटकर निहारता रहा। बेंत की ताजी चिपचिपी टहनियां मधुर सुगंध फैला रही थीं, नथुनों में खिलते बेद-मजनूं की गंध भर रही थी, युद्ध की अनंत आग में विस्मृत श्रम की, धरती की सुगंध आ रही थी।

"सुनो!....जाने दो!....रहने दो उसे अभी अपनी मां के साथ। बाद में देखा जाएगा। लड़ाई खत्म हो जाएगी....खेत जोतने के काम आएगा। सेनापति अगर

आए तो उसकी मजबूरी को समझ लेंगे—दुधमुंहा है तो मां का थन चूसेगा ही.... सेनापति ने भी चूची चूसी थी, हमने भी चूसी, आखिर जब रीत ही ऐसी है तो बात खत्म! और, हां, तुम्हारी रायफल में कोई खराबी नहीं है।"

कोई एक महीने बाद एक दिन त्रोफीम के स्क्वाड्रन की उस्तखोप्येर्स्की कस्बे के पास कज्जाक रिसाले से मुठभेड़ हो गई। दिन ढलने से पहले गोलीबारी शुरू हो गई। जब उन्होंने हल्ला बोला सांझ का झुटपुटा छाने लगा था। त्रोफीम अपने प्लाटून से बहुत पीछे छूट गया। घोड़ी पर न कोड़े का और न ही एड़ों का कोई असर हो रहा था, वह सरपट नहीं दौड़ी। वह एक ही स्थान पर सिर उठाकर हिनहिनाती घूमने लगी जब तक कि दुम उठाए उसका बछेड़ा पास न आ गया। त्रोफीम कूदकर उतर गया, तलवार को म्यान को ठूंसकर उसने गुस्से में कंधे से रायफल उतारी। दायां पक्ष श्वेत सैनिकों से भिड़ गया था। खड्ड के पास घुड़सवारों का झुंड उमड़ रहा था, मानो हवा के झोंके उसे दाएं-बाएं उड़ा रहे हों। चुपचाप मार-काट हो रही थी। घोड़ों के खुरों से जमीन कांप रही थी। त्रोफीम ने उस ओर एक नजर डालकर बछड़े के सिर का निशाना बांधा। न जाने गुस्से में हाथ कांप गया या निशाना चूकने का कोई और कारण था, जो भी हो, पर गोली चलने के बाद बछेड़े ने कुलांच भरी और खुरों से सफेद धूल उड़ाता कुछ दूरी पर जा खड़ा हुआ। त्रोफीम ने शैतान की औलाद पर साधारण नहीं, तांबे की लाल नोकों वाली बख्तरभेदी गोलियों की पूरी मैगजीन खाली कर डाली, जब उसे यकीन हो गया कि बख्तर भेदी गोलियों तक से (जो संयोग से थैले में से उसके हाथ में आ गई थीं) लाखी घोड़ी की औलाद का बाल बांका नहीं हुआ, तो वह घोड़ी पर सवार हो गया, और कोसता हुआ दुलकी चाल से उस ओर चल पड़ा, जहां लाल चेहरों वाले दढ़ियल स्क्वाड्रन कमांडर और तीन लाल सैनिकों को खड्ड की ओर खदेड़ रहे थे।

उस रात स्क्वाड्रन ने एक छोटे-से खड्ड के पास पड़ाव डाला। सिगरेटें कम पीं। घोड़ों पर जीनें कसी हुई थीं। दोन के तट से लौटे टोही दल ने बताया कि नदी पार करने के स्थान पर शत्रु का भारी जमाव है।

त्रोफीम पैरों को रबर की बरसाती में लपेटे लेटा था। उनींद में वह दिन भर की घटनाओं को याद कर रहा था। उसकी आंखों के सामने खड्ड में कूदते स्क्वाड्रन कमांडर, कमिसार पर तलवार से वार करते पोपले मुंह वाले दढ़ियल का लाल चेहरा, एक कज्जाक का क्षत-विक्षत शरीर, काले खून से तर किसी की जीन और बछेड़ा घूम रहे थे।....

पौ फटने के पहले स्क्वाड्रन कमांडर त्रोफीम के पास आया और अंधेरे में उसके पास बैठ गया।

"सो रहे हो, त्रोफीम?"

"ऊंघ रहा हूं।"

बुझते तारों को देखता हुआ स्क्वाड्रन कमांडर बोला—

"अपने बछेड़े को मार दो! ढंग से लड़ाई नहीं करने देता....उसे देखकर हाथ कांप जाता है....तलवार नहीं उठती। यह सब इसलिए कि वह बिल्कुल नादान है, घर की याद दिलाता है और युद्ध के समय ऐसी बातों का कोई स्थान नहीं....पत्थर का दिल भी पसीज जाता है....देखो तो सही घमासान लड़ाई में हरामी को किसी ने कुचला नहीं, टांगों के बीच घूम रहा था...." चुप होकर वह ख्यालों में डूबा मुस्कराया, पर त्रोफीम यह मुस्कान नहीं देख रहा था। "जानते हो त्रोफीम, उसकी दुम....पीठ पर रखकर चौकड़ी भरता है और दुम हूबहू लोमड़ी जैसी है....क्या जबर्दस्त दुम है!...."

त्रोफीम कुछ नहीं बोला। बरानकोट से सिर को ढककर ओस की नमी से ठिठुरता हुआ वह आश्चर्यजनक तेजी से सो गया।

पुराने मठ और पहाड़ी के बीच संकरे स्थान पर दोन निरंकुश वेग से बहती है। मोड़ पर पानी उफनता और हरी फेनिल लहरें बसंत की बाढ़ से तट पर बिखरे खड़िया के खंडों को पूरे जोर से हिलातीं।

अगर कज्जाकों ने दोन के उस स्थान पर कब्जा न कर लिया होता जहां उसका वेग धीमा और पाट चौड़ा व स्वभाव शांत है, और तलहटी पर वहां से गोलीबारी न शुरू की होती, तो स्क्वाड्रन कमांडर कभी भी मठ के सामने तैरकर नदी पार करने का निर्णय न लेता।

दोपहर को नदी पार करने का काम शुरू हो गया। छोटी-सी नौका पर मशीनगन से लैस बग्घी, उसके चालक और तीन घोड़े चढ़ा दिए गए। जब नौका दोन के बीचों-बीच पहुंचकर प्रवाह के विपरीत तेजी से मुड़कर हल्की-सी झुक गई। तो बाईं ओर जोता जाने वाला घोड़ा जिसने कभी पानी नहीं देखा था बिदक गया। पहाड़ी की तलहटी में, जहां स्क्वाड्रन घोड़ों की काठी-जीन उतार रहा था, नौका के लकड़ी के फर्श पर उस घोड़े की नालों की ठकठक और व्याकुल खर्राहट साफ-साफ सुनाई पड़ रही थी।

"नाव डूबो देगा!" भौंहें सिकोड़कर त्रोफीन बुदबुदाया, उसका हाथ अपनी घोड़ी की पसीने से तर पीठ तक भी न जा पाया कि नौका में घोड़ा जोर से हिनहिनाया और मशीनगन वाली बग्घी के बम को ठेलता हुआ पिछली टांगों पर खड़ा हो गया।

"गोली मार दे!....स्क्वाड्रन कमांडर चाबुक को हाथ में मसोसते हुए चिल्लाया।

त्रोफीम ने देखा कि मशीनगन चालक ने घोड़े की गर्दन पर लटककर उसके कान में पिस्तौल की नाल ठूंस दी। पटाखे की तरह गोली दगने की आवाज हुई, बाकी दोनों घोड़े सहमकर एक दूसरे से चिपक गए। मशीनगन चालकों ने नौका उलटने

के डर से, मरे घोड़े को बग्घी से सटा दिया। उसकी अगली टांगें धीरे-धीरे मुड़ गईं, सिर लटक गया....

कोई दसेक मिनट बाद संकरी रेती से सबसे पहले स्क्वाड्रन कमांडर ने अपने समंद घोड़े को पानी में उतारा, उसके पीछे छप-छप करता पूरा स्क्वाड्रन पानी में उतर गया—एक सौ आठ अधनंगे घुड़सवार और इतने ही नाना रंगी घोड़े। जीन-काठियां तीन डोंगियों में थीं। उनमें से एक त्रोफीम खे रहा था, अपनी घोड़ी उसने प्लाटून नायक नेचेपुरेन्को को सौंप दी थी। दोन के बीच पहुंचकर त्रोफीम ने देखा कि अगले घोड़े घुटने भर नदी में उतरकर अनिच्छापूर्वक पानी गटक रहे थे। घुड़सवार दबे स्वर में उन्हें हांक रहे थे। कुछ देर बाद तट से कोई पचास गज की दूरी पर घोड़ों के सिर ही सिर दिखाई पड़ रहे थे, फूत्कार सुनाई पड़ रही थी। घोड़ों के साथ उनकी अयाल पकड़े, रायफलों पर कपड़ों की पोटलियां और झोले लटकाए लाल सैनिक तैर रहे थे।

डोंगी में चप्पू पटककर त्रोफीम सीधा खड़ा हो गया और धूप से आंखें मिचमिचाते हुए तैरते झुंड में अपनी घोड़ी के लाखी सिर को खोजने लगा। स्क्वाड्रन शिकारियों की गोलियों की आवाज से डरकर आकाश में बिखरे जंगली हंसों की तरह लग रहा था। आगे-आगे स्क्वाड्रन कमांडर का समंद घोड़ा अपनी चमकीली पीठ को ऊंचा उठाता तैर रहा था, उसकी पूंछ के पास सफेद धब्बों की तरह उस घोड़े के कान चमक रहे थे जो कभी कमिसार का हुआ करता था। उनके पीछे काला झुंड तैर रहा था और सबसे पीछे, हर पल पिछड़ता हुआ प्लाटून नायक नेचेपुरेन्को का लट वाला सिर और उसके बाईं ओर त्रोफीम की घोड़ी के खड़े कान दिखाई पड़ रहे थे। आंखों पर जोर डालने पर उसे बछेड़ा भी दिखाई दे गया। वह झटक-झटककर तैर रहा था, कभी वह पानी से फुदकता तो कभी सिर्फ उसके नथुने दिखाई देते।

और तभी दोन पर चली हवा ने त्रोफीम के कानों तक मकड़ी के तार की तरह महीन पुकार—हि-हि-हि ऽऽ पहुंचाई।

नदी की सतह पर गूंजता उसका हृदयविदारक चीत्कार तलवार की धार की तरह पैना था। वह कोड़े की तरह त्रोफीम के दिल पर पड़ा और उसमें अजीब-सा परिवर्तन आ गया—पांच साल उसने लड़ते-लड़ते गुजार दिए, कितनी बार मौत से उसकी आंखें चार हुईं, पर उस पर कोई असर नहीं पड़ा, लेकिन इस समय ललछौंही दाढ़ी वाले चेहरे का रंग उड़ गया, धूसर-नीला पड़ गया—और चप्पू संभालकर उसने बहाव से उल्टी दिशा में, उस ओर नाव मोड़ दी जहां भंवर में निढाल बछेड़ा घूम रहा था और उससे कोई बीस-एक गज की दूरी पर नेचेपुरेन्को, भंवर की ओर हिनहिनाकर तैरती मां को रोकने के लिए पूरा जोर लगा रहा था। त्रोफीम का मित्र स्तेश्का येफ्रेमोव जो नाव में काठियों के ढेर पर बैठा था सख्ती से चिल्लाया—

"पागल मत बन! किनारे की तरफ मोड़! देखता नहीं, वहां कज्जाक हैं!...."

"मार दूंगा!" त्रोफीम सांस छोड़कर बोला और उसने पेटी से पकड़कर रायफल पास खींची।

नदी का बहाव बछेड़े को उस स्थान से दूर ले गया, जहां से स्क्वाड्रन ने नदी पार की थी। छोटा-सा भंवर, हरी लहरों की जिह्वाओं से चाटता उसे धीरे-धीरे घुमा रहा था। त्रोफीम जोर-जोर से चप्पू चला रहा था, नाव छलांगें-सी लगाती चल रही थी। दाएं तट पर बीहड़ से कज्जाक दौड़ते निकले। मशीनगन जोर-जोर से तड़-तड़ करने लगी। पानी में गिरती गोलियां सूं-सूं कर रही थीं। किरमिच की फटी कमीज पहने अफसर पिस्तौल हिलाता हुआ कुछ चिल्ला रहा था।

बछेड़ा अब कभी-कभी हिनहिनाता, उसका करुण चीत्कार धीमा हो गया। उसका यह चीत्कार किसी बच्चे की चीख से इतना मिलता था कि रोम-रोम सिहर उठता। नेचेपुरेन्को ने घोड़ी को छोड़ दिया और बाएं तट की ओर तैर चला। कांपते हाथों से त्रोफीम ने रायफल उठाई, भंवर में फंसे सिर के नीचे का निशाना लगाकर गोली चला दी, फिर उसने झटके से बूट उतार दिए और हाथ फैलाकर दबी-सी हुंकार करके पानी में कूद गया।

बाएं तट पर किरमिच की कमीज पहने अफसर दहाड़ा—

"गोली चलाना बंद करो!...."

पांच मिनट बाद त्रोफीम बछेड़े के पास था, बायां हाथ ठंडे पेट के नीचे डालकर उसने बछेड़े को पकड़ लिया, और नाक-मुंह में पानी भरने के कारण जोर-जोर से हिचकिया लेता बाएं तट की ओर तैर पड़ा....दाएं तट से एक भी गोली नहीं चली।

आकाश, वन, रेत—सब चटख हरे, मायावी लग रहे थे....शक्ति बटोरकर बचा-खुचा जोर लगाया—और त्रोफीम ने अपने पांवों तले जमीन महसूस की। उसने घसीटकर बछेड़े की लिसलिसी काया को रेत पर खींचा और सुबकियां लेता हरे पानी की उलटियां करता रेत को टटोलने लगा....जंगल में नदी पार कर चुके स्क्वाड्रन के सैनिकों की आवाजों का कोलाहल गूंज रहा था, रेती के पीछे कहीं तोपें दगने की कांपती गरज सुनाई पड़ रही थी। लाखी घोड़ी बदन से पानी झाड़ती और बछेड़े को चाटती त्रोफीम के पास खड़ी थी। उसकी लटकी पूंछ से रेत में पानी की इंद्रधनुषी धारा टपक रही थी।....

त्रोफीम लड़खड़ाता हुआ खड़ा हुआ, रेत पर दो पग रखे और उछलकर बगल पर गिर पड़ा। मानो सीने में गर्म सुआ घुस गया; गिरते समय उसे गोली की आवाज सुनाई पड़ी। पीठ में इकलौती गोली लगी—दाएं तट से चली। दाएं तट पर किरमिच की फटी कमीज पहने अफसर ने धुआं छोड़ते कारतूस को फेंकने के लिए उदासीनतापूर्वक कार्बाइन का बोल्ट उतारा। उधर रेत पर बछेड़े से दो कदम की दूरी पर त्रोफीम दम तोड़ रहा था और उसके कड़े नीले होंठों पर, जिन्होंने पांच साल से अपने बच्चों को न चूमा था, मुस्कान और खून के बुलबुले फूट रहे थे।

हरामी

मीश्का ने स्वप्न में देखा कि दादा ने बागीचे में चेरी की एक अच्छी कमची काट ली है। वे कमची, हिलाते हुए उसकी तरफ आ रहे हैं और डांटते हुए कह रहे हैं—

"हां, इधर तो आ जरा मिखाईल फोमीच! अगर तेरे चूतड़ों पर मार-मारकर यह कमची न तोड़ी तो कहना!"

"किसलिए दादा?" मीश्का ने पूछा।

"इसीलिए कि तूने कलगी वाली मुर्गी के दरबे से सारे अंडे चंपत कर दिए और उन्हें ले गया हिंडोले पर झूलने के लिए!"

"दादा, इस साल तो मैं हिंडोले पर एक बार भी नहीं झूला!" मीश्का डर के मारे चीख उठा।

मगर दादा ने अकड़कर अपनी दाढ़ी पर गंभीर ढंग से हाथ फेरा और पांव पटककर धमकाते हुए बोले—

"शरारती कहीं का! कर पाजामा ढीला, तेरी चमड़ी उधेड़ूं!"

मीश्का चीख उठा और उसकी आंख खुल गई। उसका दिल जोर से धक-धक कर रहा था मानो सचमुच ही कमचियों से खबर ली गई हो। बड़ी होशियारी से उसने बाईं आंख खोली। देखा कि घर में उजाला हो चुका है। सुबह की किरणें खिड़कियों से झांक रही थीं। मीश्का ने सिर उठाया तो उसे ड्योढ़ी में से कई आवाजें सुनाई दीं—मां खुशी से चीख रही थी, कुछ कहती जा रही थी, हंसी के मारे उसका बुरा हाल हुआ जा रहा था, दादा खांस रहे थे और एक अजनबी-सी आवाज भी सुनाई दे रही थी, "बू-बू-बू...."

मीश्का ने आंखें मलीं और देखा—दरवाजा खुला, जोर से बंद हुआ, दादा लपककर भीतर आए, उछलते हुए। उनका चश्मा उनकी नाक पर नाच रहा था। मीश्का ने सोचा कि भजनीकों के साथ पादरी आए होंगे (ईस्टर के दिनों में जब पादरी आते थे तो दादा इसी तरह भागे-भागे फिरा करते थे)। दादा के पीछे-पीछे एक लंबा-तड़ंगा और हट्टा-कट्टा फौजी अंदर आया। वह काला फौजी कोट और फीतों वाली टोपी पहने था। मां उसके गले से लिपटकर रो रही थी।

घर के ठीक बीच में इस अजनबी ने मां को झटककर गले से अलग किया और ऊंची आवाज में पूछा—

"कहां है मेरी संतान?"

मीश्का घबराकर कंबल के नीचे दुबक गया।

"तुम क्या सो रहे हो? अरे बेटा, तेरा बाप फौज से आया है," मां ने पुकारकर कहा।

मीश्का आंख भी न झपका पाया कि फौजी ने उसे जा दबोचा, छत तक उछाल दिया और फिर सीने से चिपका लिया। वह जब उसे अपनी लाल-लाल मूंछों से प्यार करने लगा तो बस कुछ न पूछिए—होंठों, गालों और आंखों की मुसीबत ही आ गई। मूंछें उसकी कुछ-कुछ नम थीं, नमकीन-सी। मीश्का ने छूट निकलने की पूरी कोशिश की मगर उसकी एक न चली।

"अरे, वाह, तू तो अच्छा-खासा बोल्शेविक हो गया है!....जल्दी ही बाप से बाजी मार जाएगा!.... हो-हो-हो!...." बाप जोर से हंसा और लगा मीश्का को झुलाने—कभी हाथों पर बिठा चक्कर दिलाए और फिर कभी छत तक उछाल दे।

मीश्का सहन करता रहा, सहता रहा और फिर दादा की तरह उसने भौंहें सिकोड़ीं और शरीर को अकड़ा लिया। उसने बाप की मूंछें पकड़ लीं।

"छोड़ दो मुझे, बापू!"

"नहीं छोड़ने का!"

"छोड़ दो! मैं बड़ा हो गया हूं और तुम मुझे बिल्कुल छोटे बच्चे की तरह उछाल रहे हो!...."

बाप ने बेटे को घुटनों पर बिठा लिया और मुस्कराते हुए पूछा—

"कितने साल का हो गया है रे पिस्तौल तू?"

"आठवां चल रहा है," सिकोड़ी हुई आंखों से देखते हुए मीश्का ने अनिच्छा से कहा।

"याद है न बेटे कि दो साल पहले जब मैं आया था तो कैसे मैंने तुझे जहाज बना-बनाकर दिए थे? कैसे हमने तालाब में वे जहाज चलाए थे?"

"याद है!...." मीश्का ने झट से जवाब दिया और कुछ झिझकते हुए अपनी दोनों बांहें बाप के गले में डाल दीं।

बस फिर क्या था खूब रंग जमा। बाप ने मीश्का को कंधे पर बिठाया, पैरों से पकड़ा और कमरे में दे चक्कर पर चक्कर। कभी वह दुलकी चले तो कभी घोड़े की तरह हिनहिनाये। मीश्का तो खुशी के मारे हांफने लगा। मां उसकी आस्तीन खींचने और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी—

"अरे जा, बाहर जाकर खेल!....अरे सुनता नहीं दुष्ट, कह रही हूं कि बाहर जाकर खेल!" फिर उसने बाप से कहा, "छोड़ दो अब इसे फोमा अकीमिच! छोड़ भी दो!....यह तो तुम्हें, मेरे प्रिय को, आंख भरकर देखने भी नहीं देगा। दो बरस से आंखें तरस गई हैं तुम्हें देखने को, और तुम हो कि इसी में उलझे हुए हो!"

बाप ने मीश्का को नीचे उतार दिया और कहा—

"जा भाग, जाकर अपने दोस्तों से खेल-कूद। जब लौटेगा तो तुझे मिठाई खिलाऊंगा।"

मीश्का ने दरवाजा खोला और बाहर! पहले तो यह ख्याल आया कि ड्योढ़ी में खड़ा रहकर कान लगाए और सुने कि कमरे में क्या बातचीत होती है। मगर तभी याद आया कि बाप के घर लौटने की खबर तो किसी भी बच्चे को मालूम नहीं। ऐसी खबर न बताई जाए भला? और बस वह नजर आया अहाते में, और फिर घर के बगीचे में लगे आलुओं के पौधों को फांदता हुआ तालाब पर जा पहुंचा।

तालाब के ठहरे हुए और बदबूदार पानी में मीश्का ने गोते पर गोते लगाए। फिर वह रेत पर लोटा-पोटा और उसने आखिरी बार गोता लगाया। फिर वह एक टांग पर कूदा और उसने पाजामा ऊपर खींचा। वह घर जाने को बिल्कुल तैयार ही था कि पादरी का बेटा वीत्का उसके पास आ पहुंचा।

"मीश्का, थोड़ी देर और रुक जा! आ, हम साथ-साथ गोते लगाएं और फिर हमारे घर चलकर खेलेंगे। माताजी तुझे हमारे घर आने से नहीं रोकतीं।"

मीश्का ने खिसक रहे पाजामे को बाएं हाथ से खींचा, कंधे पर की पट्टी ठीक की और कहा—

"मैं तेरे साथ खेलना नहीं चाहता। तेरे कान सड़े रहते हैं!...."

वीत्का ने बदले की भावना से आंख सिकोड़ी और अपने हड़ीले कंधे से खींचकर कमीज उतारते हुए कहा—

"यह तो कनपेड़ा है। पर तु कि मुंह से बात करता है, रे गंवार, तेरी मां ने तो तुझे बाड़ तले जना था!"

"तू देखने गया था न?"

"सुना है मैंने तो। हमारी बावर्चिन ने बताया था मेरी माताजी को।"

मीश्का ने पांव से मिट्टी कुरेदी और वीत्का को सिर से पांव तक देखा।

"बकवास करती है तेरी माताजी! मेरे बापू तो लड़ाई लड़कर आए हैं और तेरा बाप हरामखोर है, बैठा-बैठा पराया माल हड़पता रहता है!"

"हरामी!" पादरी के बेटे ने रुआंसा होकर कहा।

मीश्का ने जैसे ही पानी से घिसा हुआ एक पत्थर उठाया कि पादरी का बेटा अपने आंसुओं को रोकता हुआ मधुरता से मुस्कराया—

"लड़ नहीं मुझसे मीश्का, बुरा मत मान! अगर तू चाहे तो मैं तुझे अपना चाकू दे सकता हूं। अच्छे लोहे का बना हुआ है!"

मीश्का की तो खुशी से बांछें खिल गईं। उसने पत्थर एक तरफ को फेंक दिया। मगर तभी उसे अपने बाप के घर लौटने की बात याद आई। उसने गर्व से कहा—

"मेरे बापू तेरे चाकू से भी बढ़िया चाकू लाए हैं मेरे लिए, लड़ाई के मोर्चे से !"

"झू-ऊ-ठ बोलता है!" विश्वास न करते हुए वीत्का ने 'झू' को लंबा खींचकर कहा।

"तू खुद है झूठा!....जब कह रहा हूं कि लाए हैं तो इसका मतलब है कि लाए हैं! सचमुच की बंदूक भी लाए हैं...."

"अरे वाह, तब तो मेरे बड़े ठाठ हैं!" वीत्का ने उसकी खिल्ली उड़ाई।

"उनके पास तो एक टोपी भी है जिस पर फीते टंके हुए हैं और सुनहरे अक्षर लिखे हैं, ठीक वैसे ही, जैसे तेरी किताबों में हैं!

वीत्का देर तक सोचता रहा कि क्या कहे कि मीश्का दंग रह जाए। उसने माथे पर वल डाले और अपना पेट खुजाया। आखिर बात सूझी।

"मेरे पिताजी तो बस जल्दी ही बड़े पादरी बनने वाले हैं और तेरा बाप—वह तो था चरवाहा, ढोर चराता था। अब बोल?...."

मीश्का तंग आ गया था। वह मुड़ा और बागीचे की तरफ चल दिया। पादरी के बेटे ने उसे पुकारा—

"मीश्का, रे मीश्का! सुन तुझे एक बात बताऊं!"

"बता।"

"यहां आ, मेरे पास!"

मीश्का उसके पास गया और आशंका से उसे देखने लगा—

"हां, तो बता!"

पादरी का बेटा अपनी पतली और टेढ़ी-मेढ़ी टांगों से रेत पर नाचा, मुस्कराया और मीश्का को चिढ़ाने की नीयत से ऊंचे स्वर में कह उठा—

"तेरा बाप कम्युनिस्ट है! जैसे ही तू मरेगा और तेरी आत्मा उड़कर आसमान में पहुंचेगी तो भगवान कहेगा "चूंकि तेरा बाप कम्युनिस्ट था, इसलिए तेरी जगह जहन्नुम में है!" वहां शैतान तुझे पकड़कर कड़ाही में भूनना शुरू कर देंगे!"

"और तू यह समझता है कि शैतान तुझे छोड़ देंगे?"

"मेरे पिता तो पादरी हैं!....तू बिल्कुल बुद्धू है, अनपढ़ गंवार है! कुछ भी तो नहीं समझता...."

मीश्का को डर ने आ दबोचा। वह मुड़ा और चुपचाप घर की ओर दौड़ चला।

अहाते की बाड़ के करीब पहुंचकर वह रुक गया। वहां से उसने चीखकर पादरी के बेटे को आवाज दी और घूंसा दिखाते हुए कहा—

"अभी जाकर पूछता हूं दादा से। अगर झूठ निकला तो बस फिर कभी हमारे अहाते के पास से मत गुजरना!"

मीश्का बाढ़ लांघकर अहाते में पहुंचा, घर की तरफ लपका। उसकी आंखों के सामने घूम रही थी कड़ाही और कड़ाही में भूना जा रहा था वह खुद मीश्का....वह गर्म-गर्म कड़ाही में बैठा है और चारों ओर मलाई उभड़-उभड़ भाप छोड़ रही है। डर

के मारे उसके रोंगटे खड़े हो गए। जल्दी से जाना चाहिए दादा के पास, पूछना तो चाहिए।

फाटक में तो जैसे जान-बूझकर सूअर फंसा हुआ था। उसकी गर्दन एक तरफ थी और बाकी हिस्सा था दूसरी तरफ। वह खुरों को जमीन पर टेके था, दुम हिलाता हुआ बरी तरह चिल्ला रहा था। मीश्का ने चाहा कि सूअर को मुसीबत से बचाए। उसने फाटक खोलना चाहा, मगर सूअर बहुत जोर से खरखराने लगा। वह सूअर की पीठ पर चढ़ बैठा। सूअर ने अपना पूरा जोर लगाया, फाटक टूटकर अलग जा गिरा। सूअर वहां से भागा, अहाता लांघता हुआ खलिहान की ओर बढ़ चला। मीश्का ने उसके पेट में एड़ियां मारनी शुरू कीं। सूअर उड़ चला, मीश्का के बाल हवा में लहराने लगे। मीश्का खलिहान के पास पहुंचकर सूअर की पीठ से कूदकर नीचे उतरा। उसने देखा कि दादा ड्योढ़ी की देहरी पर खड़े हैं और उंगली से इशारा करके उसे बुला रहे हैं।

"इधर आना जरा मेरे पास, मेरे बेटे!"

मीश्का समझ न पाया कि दाद उसे क्यों बुला रहे हैं। मगर तभी उसे नरक की कड़ाही की याद आ गई। वह तेजी से भागा दादा की तरफ।

"दादा, प्यारे दादा, क्या आसमान पर शैतान होते हैं?"

"ठहर, अभी चखाता हूं तुझे शैतान का मजा! अरे ओ पाजी, तू सूअर पर क्यों चढ़ा फिर रहा था?"

दादा ने मीश्का के बाल पकड़ लिए और आवाज देकर घर के अंदर से मां को बुलाया।

"जरा बाहर आकर अपने लाड़ले को तो देखो!"

मां हड़बड़ाई हुई आई।

"क्यों डांट-डपट रहे हो?"

"क्यों डांट-डपट रहा हूं? यह हजरत अहाते में सूअर की सवारी कर रहे थे, धूल फांकते फिर रहे थे!...."

"अरे हाय! तू गाभिन सूअर पर चढ़ा फिर रहा था?" मां तो चीख उठी।

मीश्का अपनी सफाई देने को मुंह भी न खोल पाया कि दादा ने कमर से पेटी खोल ली। बाएं हाथ से वे कमरबंद थामे रहे कि कहीं पाजामा न फिसल जाए और दाएं हाथ से उन्होंने मीश्का का सिर अपने घुटनों में दबाया और लगे मरम्मत करने। पिटाई करते जाते थे और साथ ही डांटते जाते थे—

"खबरदार जो अब फिर कभी सूअर की सवारी की....खबरदार!...."

मीश्का का मन हुआ कि जोर से चीखे, मगर दादा ने डांटा—

"कुत्ते के पिल्ले, सोने नहीं देगा अपने बापू को? वह थका-हारा आया है सफर से। जरा आंख लगी है और अब तू गला फाड़ेगा?"

मजबूर होकर चुप रह जाना पड़ा। मीश्का ने दादा को लात मारने की कोशिश की, मगर यह कोशिश भी कारगर न हुई। मां ने दादा से मीश्का का पिंड छुड़ाया और मकान के अंदर धकेल दिया।

"बैठ यहां, तेरी मां को शैतान ले जाएं? ऐसे चमड़ी उधेड़ूंगा तेरी कि दादा की मार भूल जाएगा!"

दादा रसोईघर में तख्ते पर बैठे थे। वे रह-रहकर मीश्का की पीठ को देख रहे थे।

मीश्का दादा की ओर घूमा, मुट्ठी से मलकर उसने आखिरी आंसू पोंछा और दरवाजे के साथ पीठ सटाकर कहा—

"अच्छा दादा....तुम भी याद रखना!"

"अरे पाजी, तू क्या अपने दादा को डराना-धमकाना चाहता है?"

मीश्का ने देखा कि दादा फिर से पेटी खोलने लगे हैं। उसने भी होशियारी से थोड़ा-सा दरवाजा खोल लिया।

"हां, तो तू मुझे डराने-धमकाने चला है?" दादा ने फिर से पूछा।

मीश्का झटपट दरवाजे के पीछे गायब हो गया। वह दरवाजे की दरार के साथ आंख लगाकर दादा की हर गतिविधि को ध्यान से देखने लगा। फिर बोल उठा।

"कुछ दिन और ठहर जाओ, कुछ दिन और, दादाजी!....फिर तुम्हारे दांत गिर जाएंगे। तब मैं तुम्हें कौर चबा-चबाकर नहीं दूंगा!....तब तुम मुझसे कहना भी नहीं!"

दादा बाहर आए। देखा कि बागीचे में सन के झबरीले पौधों के बीच से मीश्का का सिर और नीला पाजामा झलक दिखा रहा है। दादा देर तक उसे बैसाखी दिखा-दिखाकर धमकाते और दाढ़ी में अपनी मुस्कान छिपाते रहे।

बाप के लिए मीश्का—मीन्का था। मां उसे बुलाती थी—मीन्युश्का। दादा को जब प्यार आता तो वह उनकी नजर में शरारती लड़का होता। बाकी समय जब दादी की मुर्झाई-सी सफेद भौंहें आंखों पर लटकी-सी रहतीं तो वे उसे पुकारते और कहते, "अरे ओ मिखाईल फोमीच, इधर आ, जरा तेरे कान गर्म कर दूं!"

बाकी लोग, जैसे कि इधर-उधर की बातें उड़ाने वाली पड़ोसिनें, छोकरे और गली-मोहल्ले वाले उसे मीश्का या 'हरामी' कहकर बुलाते।

मां कुंवारी ही थी कि मीश्का ने जन्म लिया था। महीने भर बाद बेशक फोमा चरवाहे से उसकी शादी हो गई थी। उसी का यह बच्चा था। मगर बदनामी भरा यह 'हरामी' शब्द सदा कि लिए मीश्का के नाम के साथ जुड़कर रह गया था।

मीश्का सीख-सलाई-सा था। वसंत के दिनों में मीश्का के बाल खिलते हुए सूरजमुखी के फूल की पंखुड़ियों की तरह पीले पड़ जाते। जून महीने का सूरज उन्हें

झुलसाकर उलझे-झबरीले बना देता। मीश्का के गाल चिड़िया के अंडों जैसे लगते, जहां-तहां बुंदकियां पड़ी हुई। रही नाक तो वह तेज धूप और तालाब में बार-बार गोते लगाने से छिली रहती और उसकी चमड़ी फटी रहती। इस धनुषाकार टांगों वाले मीश्का की सिर्फ आंखें ही सुंदर थीं। तंग पपोटों में से उसकी नीली और शरारती आंखें यों चमकतीं जैसे नदी के बर्फ के वे टुकड़े, जो अभी पिघले न हों।

बाप को मीश्का की दो चीजें पसंद थीं—एक तो उसकी सुंदर आंखें और दूसरे उसका घड़ी भर को भी टिककर न बैठना। फौज से वह उसके लिए दो उपहार लाया था—एक तो बिस्कुट जो काफी समय तक रखा रहने के कारण सूखकर पत्थर हो गया था और दूसरा, थोड़े-से घिसे हुए ऊंचे बूटों का जोड़ा। बूट तो मां ने तौलिए में लपेटकर संदूक में रख दिए और बिस्कुट को मीश्का ने देहली पर रखकर हथौड़े से तोड़ा और उसका आखिरी कण तक हड़प गया।

दूसरे दिन जैसे ही सूरज निकला कि मीश्का भी उठ बैठा। उसने लोहे के पतीले में से चुल्लू भर गर्म पानी लिया और पिछले दिन का मैल मैले-कुचैले गालों पर फैला डाला। मुंह सुखाने के लिए वह बाहर दौड़ गया।

मां गाय की सेवा में जुटी हुई थी, दादा पुश्ते पर बैठे थे, मीश्का पर नजर पड़ते ही उसे आवाज दी—

"अरे शरारती, जा भागकर खत्ती में जा। वहां मुर्गी कुड़कुड़ाई है, अंडा दिया होगा।"

मीश्का दादा का हुक्म बजाने को सदा तैयार रहता था—हाथों-पैरों के बल आन की आन में जा पहुंचा खत्ती में। इधर से गया, उधर से रेंगा और यह जा और वह जा! भाग लिया तालाब की ओर! भागता था और देखता जाता था कि कहीं दादा तो नहीं देख रहे हैं? बाड़ तक पहुंचते बिच्छू बूटी ने काट लिया, टांगें जैसे जल ही तो गईं। दादा बैठे रहे राह देखते हुए, खीझते हुए। जब सब्र का प्याला छलक गया तो खुद घुसे खत्ती में। जगह-जगह मुर्गियों की बीट चिपक गई। भीतर घुप अंधेरा था। बड़े मियां टटोलते हुए जो आगे बढ़े तो शहतीरों से जोर से सिर टकराया। आखिर रेंगकर दूसरी ओर के सिरे पर जा पहुंचे।

"अरे ओ उल्लू रे, मीश्का, क्या कहूं तुझे!....ढूंढ़ रहा है, ढूंढ़ रहा है और कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा तेरे!....अरे मूर्ख, मुर्गी क्या वहां जाकर अंडा देगी? यहीं पत्थर के नीचे होगा अंडा। तू कहां रेंगता फिर रहा है शरारती?"

दादा कहते गए, मगर जवाब में छाई रही खामोशी। उन्होंने अपने कपड़ों से बीट झाड़ी और खत्ती से निकल आए। आंखें सिकोड़कर देर तक तालाब की ओर देखते रहे। आखिर मीश्का को देख लिया और हताश होकर हाथ झटक दिया।

बालकों ने तालाब के निकट मीश्का को घेर लिया और लगे पूछने—

"तेरा बाप लड़ाई पर गया था?"

"गया था।"

"क्या करता रहा वह वहां?"

"करता क्या रहा, लड़ता रहा!"

"तू बकता है! वह वहां जूएं मारता और रसोईघर में हड्डियां चूसता रहा!...."

बालकों ने जोर का ठहाका लगाया, मीश्का को उंगलियों से कोंचने और उसके गिर्द उछलने-कूदने लगे। खीझ और अपमान से मीश्का की आंखों में आंसू आ गए। तिस पर पादरी के बेटे वीत्का ने एक और तीर छोड़ा—

"तेरा बाप कम्युनिस्ट है न?" उसने पूछा।

"मालूम नहीं...."

"मैं जानता हूं कि वह कम्युनिस्ट है। मेरे पिताज़ी आज सुबह कह रहे थे कि तेरे बाप ने शैतान के हाथ अपनी आत्मा बेच दी है। उन्होंने यह भी कहा था कि सभी कम्युनिस्टों को शीघ्र ही फांसी दी जाएगी!"

बालक चुप हो गए, मीश्का का दिल बैठ गया। मेरे बापू को फांसी दी जाएगी—पर किसलिए? उसने जोर से दांत पीसे और कहा—

"मेरे बापू के पास बहुत बड़ी बंदूक है, सभी बुर्जुओं को उड़ा देगा!"

वीत्का एक पैर आगे की तरफ बढ़ाकर बड़ी शान से बोला—

"कुछ नहीं बनेगा उसके किये-धरे! मेरे पिताजी उसे आशीष ही नहीं देंगे। बिना आशीष के वह कुछ नहीं कर पाएगा!...."

दुकानदार के बेटे प्रोश्का ने नथुने फुलाकर मीश्का की छाती में मुक्का मारा और चीखकर कहा—

"तू अपने बाप की शान में मत रहना! जब क्रांति हुई थी तो वह मेरे बाप का माल उठा ले गया था। मेरे पिता ने कहा था, 'सरकार लौट आएगी तो मैं चरवाहे फोमा को ही सबसे पहले खत्म करूंगा!' "

प्रोश्का की बहन नताशा ने पैर पटककर कहा—

"करो इसकी मरम्मत, देख क्या रहे हो?"

"मारो इस कम्युनिस्ट के बेटे को!"

"हरामी!"

"प्रोश्का, दिखाओ इसे तारे!"

प्रोश्का ने कमची घुमाई और कसकर मीश्का के कंधे पर रसीद की। पादरी के बेटे वीत्का ने लंगड़ी मारी और मीश्का रेत पर चारों खाने चित हो गया।

बालक खूब जोर से चिल्लाए और मीश्का पर टूट पड़े। नताशी अपनी बारीक आवाज में शोर मचाती हुई झपटी और मीश्का की गर्दन नोचने लगी। किसी ने कसकर मीश्का के पेट में लात जमाई।

मीश्का ने जोर लगाकर प्रोश्का को अपने ऊपर से धकेला, उछलकर खड़ा हुआ और शिकारी कुत्तों से बचकर भागते हुए खरगोश की तरह घर की तरफ झपटा। उसके पीछे सीटियां बजती रहीं, उस पर पत्थर फेंका। मगर उसका पीछा किसी ने नहीं किया।

मीश्का ने पटुए के हरे भरे कुंज में पहुंचकर ही दम लिया। पटुए के पौधे उसके सिर से ऊंचे थे। वह सीली और सोंधी जमीन पर बैठ गया और नोची-खसोटी हुई गर्दन से खून साफ करते हुए रो पड़ा। ऊपर, पत्तियों के बीच से धूप छन रही थी, वह मीश्का की आंखों में झांकने के लिए बेचैन थी। धूप ने उसके गालों से आंसू सोख लिए और उसके उठे हुए लाल बालों को मां की तरह प्यार से चूमती रही।

मीश्का देर तक इसी तरह वहां बैठा रहा। जब आखें सूख गई तो वहां से उठा और चुपचाप आंगन में पहुंचा।

पिता छानी में बैठा हुआ छकड़े के पहिए को तेल लगा रहा था। उसकी टोपी खिसककर गुद्दी पर पहुंच गई थी, फीते लटक रहे थे और वह सफेद धारियों वाली नीली कमीज पहने था। मीश्का नजर बचाकर पिता के पास पहुंचा और छकड़े के करीब आकर खड़ा हो गया। देर तक वह चुप्पी साधे रहा। फिर उसने हिम्मत करके आपका हाथ छुआ और फुसफुसाते हुए पूछा—

"बापू, तुम लड़ाई पर गए थे तो वहां क्या करते रहे?"

अपनी लाल मूंछों के बीच मुस्कराते हुए पिता ने जवाब दिया—

"लड़ाई लड़ता रहा बेटे!"

"मगर लड़के....लड़के कहते हैं कि तुम वहां सिर्फ जूएं मारते रहे!...."

आंसुओं से मीश्का का गला रुंध गया। बाप हंस दिया और उसने मीश्का को हाथों पर उठा लिया।

"मेरे बेटे, वे बकते हैं! मैं तो जहाज पर था। उस बड़े जहाज पर जो समुद्र में चलता है। मैं उसी में था और फिर लड़ने गया।"

"किससे तुमने लड़ाई लड़ी?"

"धन-दौलत वालों से, मेरे लाल! तू अभी बहुत छोटा है! इसीलिए मुझे लड़ना पड़ा तेरे बजाय। इसके बारे में तो गाना भी गाया जाता है।

बाप मुस्कराया, मीश्का की ओर देखते हुए पैरों से ताल देकर गाने लगा—

> अरे मिखाईल, मेरे बेटे,
> मत जा रे तू लाम पर
> मेरी सांस अभी बाकी है
> जीवन की मैं सभी बहारें देख चुका हूं,
> तू तो खिलता फूल अभी है

अभी तुझे शादी करनी है
मेरे लाल, मेरे लाल....

बालकों की हरकत से मीश्का को जो दुख हुआ था, अब वह उसे भूल गया। अब उसे इस बात पर हंसी आ गई कि बाप की मूंछें उसके होंठों पर मूंज के उन रेशों की भांति अकड़ी हुई थीं जिनसे मां झाड़ू बनाती है। मूंछों के नीचे जब होंठ हिलते-डुलते थे तो देखने से हंसी आती थी और जब मुंह खुलता था तो अंदर एक गोल और काला-सा छेद नजर आता था।

"तू इस वक्त मेरे काम में खलल मत डाल मीन्का," बाप ने कहा, "अभी मुझे छकड़े की मरम्मत कर लेने दे और रात को सोते वक्त मैं तुझे लड़ाई की सभी बातें सुनाऊंगा।"

दिन लंबा होता चला गया, स्तेपी के सुनसान लंबे रास्ते की तरह। सूरज ने अपना किरणजाल समेटा और घोड़ों का झुंड गांव से गुजर गया। धूल बैठ गई और संवलाए हुए आकाश से पहले सितारे ने लजाते हुए धरती की ओर देखा।

मीश्का के मन को चैन नहीं था, और मां जैसे कि जान-बूझकर देर करती जा रही थी। वह देर तक दूध दुहती रही, देर तक उसे छानती रही, फिर तहखाने में गई तो वहीं घंटा भर गुप रही। मीश्का को करार नहीं था, वह मां के इर्द-गिर्द चक्कर काटता फिर रहा था।

"जल्द ही खाना दोगी न मां?"

"जरा सब्र कर रे! मिल जाएगा खाना, मरा क्यों जा रहा है!"

मगर मीश्का उसके पीछे-पीछे लगा रहा। मां तहखाने में जाए तो वह भी उसके पीछे, मां रसोईघर जाए तो वह भी वहां हाजिर। जोंक की तरह चिपक गया मां का दामन पकड़े।

"मां....मां....जरा जल्दी से खाना दे दो!"

"अरे कह तो दिया! पेट में आग लगी है तो जा, जाकर रोटी का टुकड़ा लेकर खा ले!"

मगर मीश्का सुनी-अनसुनी करता रहा। मां ने गुद्दी पर एक चपत जमा दिया, मगर इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ा।

मीश्का ने रात का खाना हड़बड़ी में जैसे-तैसे गले के नीचे उतारा और फटाफट जा पहुंचा सोने के कमरे में। पाजामा उतारकर उसने संदूक के पीछे काफी दूर फेंक दिया और बिस्तर में मां की रजाई के नीचे जा दुबका। रजाई रंगबिरंगे कपड़ों के टुकड़ों को जोड़कर बनाई गई थी। बिस्तर में जा लेटा और मन में इस बात की बेचैनी बनी हुई थी कि कब बाप आए और लड़ाई का हाल सुनाए।

दादा देव-मूर्तियों के सामने घुटने टेके हुए प्रार्थना कर रहे थे। मीश्का ने सिर

ऊंचा किया। देखा कि दादा बड़ी कठिनाई से और बाएं हाथ की उंगलियों से सहारा लेकर झुके और इतना झुके कि उनका सिर फर्श से जा टकराया। मीश्का ने दीवार पर कुहनी मारी—ठक!....

दादा फिर फुसफुसाते हुए प्रार्थना करते और फर्श पर माथा टेकते रहे। मीश्का भी दीवार को ठकठकाता रहा। दादा खीझ उठे, मीश्का की तरफ मुड़े और डांटते हुए बोले—

"ठहर शैतान, अभी बताता हूं तुझे! क्षमा करना मुझे भगवान! नहीं मानता तो अभी तेरी मरम्मत करता हूं!"

पिटाई शुरू होने वाली ही थी कि पिता ने भीतर कदम रखा।

"तू मां के बिस्तर में क्यों जा घुसा रे, मीन्का?" बाप ने पूछा।

"मैं मां के साथ ही तो सोता हूं।"

बाप बिस्तर पर बैठ गया और चुपचाप मूंछों को बल देने लगा। कुछ देर बाद उसने कहा—

"मगर मैंने तो दादा के साथ तेरा बिस्तर लगाया है...."

"मैं दादा के साथ नहीं सोऊंगा!"

"मगर क्यों?"

"उनकी मूंछों से तंबाकू की बू आती है!"

बाप ने फिर मूंछें मरोड़ीं और गहरी सांस लीं—

"नहीं बेटे, तू दादा के साथ ही जाकर सो जा...."

मीश्का ने रजाई से सिर ढक लिया और चोरी-चोरी एक आंख से देखते हुए शिकायत के लहजे में कहा—

"कल भी तुम मेरी जगह सोए रहे और आज फिर वही चाहते हो....आज तुम सो जाओ दादा के साथ!"

मीश्का बिस्तर पर उठकर बैठ गया, बाप का सिर हाथों में ले लिया और धीरे से बोला—

"तुम ही सो जाओ दादा के साथ! मां तो वैसे भी तुम्हारे साथ नहीं सोएगी। तुम्हारे मुंह से भी तंबाकू की तेज बू आती है!"

"अच्छा, मैं ही सो जाऊंगा दादा के साथ, मगर फिर लड़ाई का किस्सा नहीं सुनाऊंगा।"

बाप उठा और रसोईघर की तरफ चल दिया।

"बापू!"

"क्या है?"

"अच्छा तो यहीं सो जाओ...." मीश्का ने गहरी सांस लेकर कहा और उठकर बैठ गया, "मगर लड़ाई के बारे में तो सुनाओगे ना?"

"हां, सुनाऊंगा।"

दादा दीवार की ओर लेट गए और मीश्का को उन्होंने दूसरी ओर लिटा दिया। कुछ देर बाद बाप आया। उसने बिस्तर के करीब एक बेंच खींच ली और कागज में मोटा तंबाकू लपेटकर कश लगाने लगा।

"हां तो हुआ यह....तुझे याद होगा कि हमारे खलिहान के पीछे कभी दुकानदार का एक खेत था?"

मीश्का को याद हो आया कि कैसे वह कभी सोंधे और ऊंचे-ऊंचे गेहूं के खेत में भागा-फिरा करता था। पत्थर की मुंडेर फांदकर वह इस खेत में जा पहुंचता था। गेहूं के पौधे उसके सिर से ऊंचे-ऊंचे होते थे और भरी हुई बालें मुंह पर गुदगुदी किया करती थीं। खेत से धूल मिट्टी और स्तेपी की हवा की गंध भी आया करती थी। मां उसे पुकार-पुकारकर कहा करती थी–

"मीन्युश्का, खेत में बहुत दूर मत जाना, तू रास्ता भूल जाएगा!...."

बाप घड़ी भर को चुप हो गया और फिर मीश्का का सिर सहलाते हुए बोला–

"याद है तुझे कि तू मेरे साथ रेत के टीले तक गया था? वहां हमारा खेत था...."

मीश्का को फिर याद आया–रेत के टीले के पीछे, रास्ते के साथ-साथ, खेत की एक टेढ़ी और पतली-सी पट्टी थी तो सही। मीश्का अपने बाप के साथ वहां गया था और खेत को पशुओं के खुरों से रौंदा हुआ पाया था। भूमि पर जहां-तहां गेहूं की बालों की गंदी-मंदी ढेरियां लगी हुई थीं। सिर्फ डंठल हवा में झूल रहे थे। मीश्का को इस बात का भी स्मरण हो आया कि उसके हट्टे-कट्टे और लंबे-तड़ंगे बापू का चेहरा बहुत भयानक रूप से विकृत हो उठा था और धूल-मिट्टी से लथपथ उसके गालों पर रुक-रुककर आंसू की बूंदें टपकने लगी थीं। आपको रोता देखकर मीश्का भी रो दिया था।....

लौटते हुए बाप ने खेत के रखवाले से पूछा था....

"फेदोत, जानते हो कि मेरे खेत का किसने ऐसा बुना हाल किया है?"

फेदोत ने जोर से थूककर जवाब दिया था–

"दुकानदार मंडी की ओर अपने ढोर-डंगर लिए जा रहा था। जान-बूझकर उसने उन्हें तुम्हारे खेत में छोड़ दिया था...."

....बाप ने बेंच और नजदीक खींची और कहा–

"दुकानदार और बाकी अमीर लोगों ने सारी जमीन हथिया रखी थी, गरीबों के पास बोने के लिए जमीन ही नहीं थी। हमारे गांव में ही नहीं, सभी जगह यही हाल था। बुरी तरह से नाक में दम कर रखा था तब उन्होंने हमारा....जीना दूभर था ....मैंने सोचा जमीन नहीं है, न सही, दूसरों के ढोर चराया करूंगा। कुछ अर्से बाद मुझे सेना में भर्ती कर लिया गया। सेना का भी यही हाल कि अफसर लोग जरा-जरा-सी बात पर कसकर तमाचा लगाते....फिर बोल्शेविक सामने आ गए।

इनमें जो सबसे बड़ा था, उसे लेनिन कहते थे। वह वैसे तो बड़ा सीधा-सादा आदमी था, मगर दिमाग बहुत बढ़िया पाया था उसने। जरूर हम देहातियों की नस्ल का ही होगा। बोल्शेविकों ने हमें ऐसी बातें बताईं कि हम तो दंग रह गए। कहा उन्होंने, 'अरे देहातियो, किसानो-मजदूरो, मुंह बाए क्या देख रहे हो? उठो मिलकर, सफाया कर दो इन श्रीमानों का, इन अफसरों का! सब कुछ तुम्हारा ही है!'

"उनके इन शब्दों ने हमें चक्कर में डाल दिया। सोचा-विचारा तो महसूस हुआ कि ठीक ही कहते हैं। तो हम लोगों ने श्रीमानों से जमीन-जायदाद छीन ली। मगर इन लोगों ने बुरा वक्त भला कब देखा था, टूट पड़े हम पर, हम किसानों और मजदूरों पर, और बस लड़ाई शुरू हो गई....समझे बेटे?

"हां, और बोल्शेविकों में सबसे बड़े यानी लेनिन ने जनता को उठाकर खड़ा कर दिया। ठीक वैसे ही जैसे कि हल का फाल मिट्टी को उठाता चला जाता है। उन्होंने फौजियों और मजदूरों को एकजुट किया और अमीर लोगों की धज्जियां उड़ाने लगा। धज्जियां उड़ा दीं उनकी! फौजी और मजदूर लाल गार्ड कहलाने लगे। मैं भी उन्हीं में था। एक बड़े-से घर में रहते थे हम—स्मोल्नी नाम था उसका। दालान उसका—यह लंबा सारा था और कमरे इतने थे कि आदमी रास्ता भूल जाए।

"एक बार क्या हुआ कि रात का वक्त था, मैं दरवाजे पर पहरा दे रहा था। बाहर बड़ी ठंड थी और मैं सिर्फ एक फौजी कोट पहने था। हवा तन को काट रही थी....तभी इस घर से दो आदमी बाहर निकले और आगे बढ़े तो मैंने देखा कि उनमें से एक लेनिन हैं। वह मेरे पास आए और प्यार से बोले—

"साथी, सर्दी तो नहीं लग रही?"

"और मैंने जवाब दिया, 'नहीं, साथी लेनिन! ठंड ही क्या, कोई दुश्मन भी नहीं डरा सकता हमें! हमने शासन की बागडोर इसलिए तो अपने हाथों में नहीं ली है कि फिर से उसे बुर्जुओं के हवाले कर दें!'

"लेनिन मुस्करा दिए और उन्होंने जोर से मुझसे हाथ मिलाया। फिर वह धीरे-धीरे आगे बढ़े और फाटक की ओर चले गए।"

बाप ने जेब से तंबाकू निकाला, कागज में लपेटा और सिगरेट बनाकर दियासलाई जलाई। उस रोशनी में मीश्का ने बाप की लाल और अकड़ी मूंछों में चमकती हुई आंसू की बूंद देखी, ओस की उस बूंद जैसी जो सुबह के वक्त बिच्छूबूटी की पत्ती के सिरे पर अटकी रह जाती है।

"हां तो ऐसे थे लेनिन! सभी की चिंता करते थे। एक-एक फौजी रहता था उनके दिल में....उस दिन के बाद मैंने अक्सर उन्हें देखा। मेरे नजदीक से गुजरते, दूर से ही मुस्कराते और पूछते—

" 'तो बुर्जुआ मिटा तो नहीं डालेंगे हमें?'

" 'इतना दम उनमें कहां, साथी लेनिन!' मैं उन्हें जवाब देता।

"सोलह आने सही निकली बेटे उनकी बात। जमीनें और कारखाने हमने अमीरों से, हमारा खून पीने वालों से छीन लिए और उनकी कमर तोड़ डाली!....जब बड़ा हो जाएगा तो यह याद रखना कि तेरा बापू जहाजी था और चार बरस तक उसने कम्यून के लिए अपना खून बहाया था। तेरे बड़े होने तक मैं इस दुनिया में नहीं रहूंगा, लेनिन भी नहीं होंगे, पर हमारा काम सदियों तक जिएगा!....बड़ा होने पर तू भी अपने बापू की तरह ही सोवियत सत्ता के लिए लड़ेगा, न ?"

"लड़ूंगा!" मीश्का चिल्ला उठा। वह उछलकर बिस्तर पर खड़ा हो गया। उसने बाप की गर्दन से लिपटना चाहा। वह भूल गया कि करीब ही दादा सोए पड़े हैं, उनके पेट में पांव लगा।

दादा चीख उठे। उन्होंने हाथ बढ़ाया कि मीश्का को बालों को पकड़ लें। मगर बाप ने जल्दी से मीश्का को हाथों पर उठा लिया और दूसरे कमरे में ले गए।

मीश्का बाप के हाथों पर ही सो गया। शुरू में तो वह देर तक अद्भुत व्यक्ति लेनिन, बोल्शेविकों, लड़ाई और जहाजों के बारे में सोचता रहा। नींद आते समय उसे दबी-दबी-सी आवाजें सुनाई देती रहीं, पसीने और घटिया तंबाकू की गंध आती रही। बाद में पलकें भिंच गईं मानों किसी ने हथेलियों से सहला-सहलाकर उन्हें बंद कर दिया हो।

मीश्का को अभी अच्छी तरह से नींद भी न आई थी कि उसने स्वप्न में एक शहर देखा। चौड़ी-चौड़ी सड़कें, राख में लोट-पोट होती हुई मुर्गियां। गांव में उनकी काफी संख्या होती है, मगर नगर में तो कोई हिसाब ही नहीं। मकान बिल्कुल वैसे थे जैसे कि बाप ने बताए थे। एक बड़ा-सा मकान, सरकंडों से ढका हुआ, उसकी चिमनी पर एक और मकान खड़ा हुआ, उसकी चिमनी पर तीसरा मकान रखा हुआ और सबसे ऊपर वाले मकान की चिमनी आकाश को छूती हुई।

मीश्का है कि चला जा रहा है इस शहर की सड़क पर। मुंह ऊपर को किए इधर-उधर देखता जा रहा है। अचानक इतने में कहीं से एक लंबा-तड़ंगा आदमी उसके सामने आकर खड़ा हो गया। वह लाल कमीज पहने था।

"अरे मीश्का, क्यों तू सड़क पर बेमतलब मटरगश्ती करता फिर रहा है ?" उसने बड़े प्यार से पूछा।

"दादा ने मुझे खेलने की छुट्टी दी है।"

"तू जानता है कि मैं कौन हूं?"

"नहीं, मैं नहीं जानता...."

"मैं—साथी लेनिन हूं!"

मीश्का को डर ने ऐसा दबोचा कि उसके घुटने जवाद दे गए। उसका मन हुआ कि सिर पर रखकर भाग ले, मगर लाल कमीज वाले व्यक्ति ने मीश्का की बांह पकड़ ली और कहा—

"रे मीश्का, शर्म तो तुझमें रत्ती भर नहीं है! तू खूब अच्छी तरह यह जानता है कि मैं गरीब लोगों के लिए लोहा ले रहा हूं। तू क्यों मेरी फौज में शामिल नहीं हुआ?"

"दादा मुझे इसकी इजाजत नहीं देते!" मीश्का ने अपनी सफाई पेश की।

"खैर देख ले, जैसी तेरी मर्जी," साथी लेनिन ने कहा, "मगर तेरे बिना मेरा काम सिरे चढ़ने का नहीं। तुझे मेरी फौज में नाम लिखाना ही होगा!"

मीश्का ने लेनिन का हाथ पकड़ लिया और बहुत दृढ़तापूर्वक कहा—

"अच्छा तो यों ही सही। मैं दादा से पूछे बिना ही तुम्हारी फौज में शामिल हो जाता हूं और गरीब लोगों के लिए लड़ूंगा। ऐसा करने के लिए अगर दादा मुझे डांटें-डपटेंगे तो उनसे तुम निपट लेना!"

"मैं जरूर तुम्हारी हिमायत करूंगा!" साथी लेनिन ने कहा और सड़क पर आगे बढ़ गया। मीश्का का तो खुशी के मारे यह हाल था कि सांस लेना मुश्किल ! दिल बल्लियों उछल रहा था। उसका मन हो रहा था कि चीखकर कुछ कहे, मगर जबान सूखकर रह गई।....

मीश्का बिस्तर पर उछल पड़ा, दादा को लात लगी और मीश्का की आंख खुल गई।

दादा नींद से बड़बड़ाए, होंठों से चप-चप की आवाज करने लगे। खिड़की से रोशनी झांकने लगी थी। तालाब के परे, हल्के पीले आकाश में रक्तवर्ण फेन से मिलते-जुलते बादल पूर्व की ओर से उमड़े चले आ रहे थे।

अब तो बाप हर शाम मीश्का को लड़ाई और लेनिन के किस्से सुनाने और यह बताने लगा कि वह किस-किस जगह लड़ने गया।

शनिवार का दिन था। शाम को कार्यकारिणी समिति का चौकीदार एक नाटे-से व्यक्ति को साथ लिए हुए आया। यह व्यक्ति फौजी कोट पहने था और बगल में चमड़े का बैग दबाए था। चौकीदार ने दादा को आवाज दी और कहा—

"देखिए, मैं आपके घर पर सोवियत के एक कर्मचारी को लेकर आया हूं। वह नगर से आया है और रात को आप ही के यहां टिकेगा। दादा, रात की रोटी का प्रबंध कर दीजिएगा।"

"वह तो खैर सब हो जाएगा," दादा ने कहा, "मगर श्रीमान् साथी, आप आर्डर तो लाए हैं न?"

दादा की योग्यता देखकर मीश्का तो दंग ही रह गया। वह मुंह में उंगली डालकर बहुत ध्यान से बातें सुनने लगा।

"आर्डर-वार्डर सब कुछ है!" चमड़े के बैग वाला व्यक्ति हंस दिया और अंदर के कोठे की तरफ चल दिया।

दादा उस अजनबी के पीछे-पीछे हो लिए और मीश्का दादा के पीछे-पीछे।

"किस काम से आप हमारे गांव में आए हैं?" दादा ने रास्ते में पूछा।

"मैं यहां चुनाव कराने आया हूं। सोवियत के सदस्यों और अध्यक्ष का चुनाव होगा।"

कुछ ही दूर बाद बाप भी खलिहान से आ गया। उसने अजनबी से दुआ-सलाम की और मां से खाने का प्रबंध करने को कहा। खाने के बाद अजनबी और मीश्का का बाप बेंच पर साथ-साथ बैठ गए। अजनबी ने अपना चमड़े का बैग खोला, उसमें से कागजों का एक पुलिंदा निकाला और बाप को दिखाने लगा। मीश्का के मन में बड़ी जिज्ञासा थी और वह इनके आस-पास घूम रहा था कि किसी तरह उन कागजों पर एक नजर डाल ले। बाप ने एक कागज लिया और मीश्का को दिखाते हुए कहा—

"देख मीश्का, यह हैं लेनिन!"

मीश्का ने बाप के हाथ से तस्वीर झपट ली, उसी पर नजर गड़ा दी और उसका मुंह आश्चर्य से खुल गया। यह लेनिन का एक छवि चित्र था। कद बहुत बड़ा नहीं, वह लाल कमीज भी नहीं, कोट पहने थे। एक हाथ पतलून की जेब में था और दूसरा सामने की ओर उठा हुआ। मीश्का इस चित्र पर नजर टिकाए था। एक ही नजर में वह उसे ऊपर से नीचे तक देख गया। उसके स्मृतिपट पर हमेशा के लिए, अमिट रूप में लेनिन का एक-एक नक्श अंकित होकर रह गया। कुछ-कुछ मुड़ी हुई भौंहें और आंखों और होंठों के कोनों में दुबकी हुई मुस्कान की स्मृति उसके मन में सदा के लिए जमकर रह गई।

अजनबी ने मीश्का के हाथ से चित्र लिया, अपने बैग में रखकर ताला लगाया और सोने की तैयारी करने लगा। उसने कपड़े उतारे और फौजी कोट ओढ़कर लेट गया। उसकी आंख लगने ही वाली थी कि दरवाजा चरचराया। उसने सिर ऊपर उठाया—

"कौन है?"

फर्श पर किसी के नंगे पैरों की आहट हुई।

"कौन है?" उसने दोबारा पूछा और बिस्तर के निकट बिल्कुल अप्रत्याशित ही मीश्का को खड़े पाया।

"क्या बात है, बेटे?"

मीश्का घड़ी भर चुपचाप खड़ा रहा, फिर उसने साहस बटोरा और फुसफुसाकर कहा—

"चाचा, देखो बात यह है...तुम मुझे....मुझे लेनिन दे दो!...."

अजनबी चुप रहा, बिस्तर से आगे की ओर गर्दन बढ़ाकर उसने लड़के को गौर से देखा।

मीश्का को डर ने आ दबाया—हो सकता है कि चाचा कंजूसी कर जाए और

चित्र न दे! आवाज कांप न जाए इसका प्रयास करते और रुंधते हुए गले से उसने जल्दी-जल्दी फुसफसाकर कहा—

"आप मुझे दे दें, बिल्कुल दे दें यह तस्वीर....मेरे पास टीन का अच्छा-सा डिब्बा है, मैं वह दे दूंगा आपको....और इसके अलावा पांसे भी दे दूंगा और...." मीश्का ने हाथ झटका और बुझे मन से आगे कहा, "वे जूते भी दे दूंगा जो बापू मेरे लिए लाए हैं!"

"मगर तू करेगा क्या लेनिन का?" अजनबी ने मुस्कराते हुए पूछा।

"नहीं देने का!" मीश्का ने मन ही मन सोचा। उसने मुंह दूसरी तरफ फेर लिया ताकि आंसू नजर न आएं और टूटती-सी आवाज में कहा—

"चाहिए, बस!"

अजनबी हंस दिया। उसने सिरहाने के नीचे से बैग निकाला और मीश्का को तस्वीर दे दी। मीश्का ने तस्वीर ली, उसे कमीज के नीचे, दिल के बिल्कुल निकट, सीने पर जोर से भींचा और कोठे से भागता हुआ बाहर आया। दादा की आंख खुल गई और उन्होंने पूछा—

"अरे तू कहां टापता फिर रहा है आधी रात को? कहा था तुझसे कि रात को दूध मत पी—अब बार-बार उठ-उठकर भागेगा! अरे सुन! अब गंदे पानी की यह जो बाल्टी पड़ी है, उसी में अपना काम कर ले। बाहर अहाते में ले जाऊं तुझे, यह मेरे बस की बात नहीं!"

मीश्का चुपचाप लेट गया, तस्वीर को दोनों हाथों से भींचे रहा। वह करवट लेते हुए डरता कि कहीं तस्वीर मुड़मुड़ा न जाए। इसी तरह उसकी आंख लग गई।

मुंह अंधेरे ही मीश्का की आंख खुल गई। मां ने गाय दुहकर उसे रेवड़ के साथ बस भेजा ही था। मीश्का को देखा तो दोनों हाथों से सिर थाम लिया—

"अरे तुझे किसने काट खाया है! इतने सवेरे ही क्यों उठ बैठा है?"

मीश्का ने फोटो को कमीज के नीचे दबाया और मां के करीब से झटपट खलिहान की तरफ बढ़ गया और खत्ती में गायब हो गया।

खत्ती के चारों ओर बरडॉक की झाड़ियां खड़ी थीं और बिच्छू बूटी की हरी दुर्गम दीवार कांटे फैलाए हुए थी। मीश्का कूद-फांदकर खत्ती में जा पहुंचा। उसने धूल और मुर्गियों की बीट हाथों से हटाई, बरडॉक का एक बड़ा-सा और सूखकर पीला पड़ा हुआ पत्ता तोड़ा, फोटो को उसमें लपेटा और जमीन पर रखकर उस पर एक कंकड़ रख दिया ताकि वह हवा से उड़ न जाए।

सुबह से शाम तक पानी बरसता रहा। आकाश में सुरमई चंदवा छाया हुआ था। अहाते के गढ़हों में बूंदों की टपटप हो रही थी और सड़कों पर छोटे-छोटे नद-नाले बह रहे थे।

मीश्का को मजबूरन दिन भर घर में बैठे रहना पड़ा। झुटपुटा हो चला था, जब

बाप और दादा सभा में भाग लेने के लिए कार्यकारिणी के दफ्तर की ओर चले। मीश्का ने दादा की छज्जेदार टोपी पहनी और उनके पीछे-पीछे हो लिया। कार्यकारिणी का दफ्तर गिरजाघर के चौकीदार के झोंपड़े में था। बड़ी मुश्किल से टेढ़ी-मेंढ़ी और गंदी-मंदी सीढ़ियां चढ़कर मीश्का बरसाती में पहुंचा और वहां से कमरे में गया। कमरा खचाखच भरा हुआ था और तंबाकू का धुआं छत को छू रहा था। खिड़की के पास मेज लगाए वही अजनबी बैठा था। वह कमरे में जमा होते हुए कज्जाकों से कुछ कह रहा था।

मीश्का चुपचाप सबसे पीछे वाली बेंच पर जा बैठा।

"साथियो! आपमें से कौन इस बात के हक में हैं कि फोमा कोर्शुनोव को अध्यक्ष चुना जाए? कृपया अपने हाथ उठाएं!"

मीश्का के आगे दुकानदार का दामाद प्रोखोर लिसेंकोव बैठा था। वह चिल्लाया–

"भाइयो!....मेरी प्रार्थना है कि इस व्यक्ति को उम्मीदवार न बनाया जाए। वह ईमानदार नहीं है। वह जब हमारे रेवड़ चराया करता था तभी यह बात साफ हो गई थी...."

मीश्का ने मोची फेदोत को खिड़की के दासे से उठते देखा। वह दोनों हाथ हिलाकर चिल्लाने लगा–

"साथियो, खाते-पीते लोग यह सहन नहीं कर सकते कि चरवाहा फोमा सोवियत का अध्यक्ष चुना जाए। मगर चूंकि वह प्रोलेतारी और सोवियत सत्ता का हिमायती है इसलिए...."

मोची फेदोत अपनी बात पूरी भी न कर पाया कि दरवाजे के पास सटकर खड़े हुए मालदार कज्जाक जोर-जोर से पांव पटकते और सीटियां बजाने लगे। कार्यकारिणी के दफ्तर में गुलगपाड़ा मच गया।

"चरवाहा नहीं चाहते!"

"फौज से लौट आया है–अब फिर से ढोर चराया करे।"

"भाड़ में जाए फोमा कोर्शुनोव!"

मीश्का ने बेंच के पास खड़े बाप के चेहरे पर नजर डाली, उस पर हवाइयां उड़ रही थीं। बाप का ऐसा हाल देखकर खुद मीश्का के चेहरे का रंग उड़ गया।

"खामोश रहो साथियो! सभा से निकाल दूंगा!" मेज पर जोर से मुक्का मारकर अजनबी चिल्लाया।

"कज्जाकों में से अपना आदमी चुनेंगे।"

"नहीं चाहिए!"

"नहीं चा-हि-ए...." कज्जाक शोर मचा रहे थे और सबसे ज्यादा गला फाड़कर चीख रहा था दुकानदार का दामाद प्रोखोर।

एक हट्टा-कट्टा और लाल दाढ़ी वाला कज्जाक उछलकर बेंच पर खड़ा हो गया। उसके कान में बाली थी और फटे हुए कोट पर जहां-तहां पैबंद लगे थे।

"भाइयो!....मामला चौपट हुआ जा रहा है!....होहल्ला करके ये अमीर लोग अपने आदमी को अध्यक्ष बना देना चाहते हैं!....फिर से वही...."

वहां इतना शोर मच रहा था कि कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। बाली वाला कज्जाक चीख-चीखकर जो कुछ कह रहा था उसका कोई-कोई शब्द ही मीश्का को सुनाई दिया–

"जमीन....फिर बंटवाई जाएगी....बंजर हमें....बढ़िया जमीन वे खुद दबा लेंगे...."

"प्रोखोर को अध्यक्ष बनाया जाए!" दरवाजे के निकट लगातार यही स्वर गूंज रहा था।

"प्रोखोर! हो-हो-हो! हा-हा-हा!"

जैसे-तैसे शोर कम हुआ। अजनबी भौंहें चढ़ाकर और लाल-पीला होकर देर तक कुछ चीखता-चिल्लाता रहा।

"डांट-डपट रहा होगा!" मीश्का ने सोचा।

अजनबी ने ऊंची आवाज में पूछा–

"फोमा कोर्शुनोव के हक में कौन-कौन हैं?"

बेंचों के ऊपर बहुत-से हाथ उठ गए। मीश्का ने भी हाथ ऊंचा कर दिया। कोई आदमी एक के बाद दूसरी बेंच पर कूदता हुआ ऊंचे-ऊंचे गिनती करने लगा–

"तिरसट....चौंसठ," मीश्का की ओर न देखते और उसके उठे हुए हाथ की ओर उंगली से इशारा करते हुए उसने कहा, "पैंसठ!"

अजनबी ने कागज पर कुछ लिखा और फिर ऊंची आवाज में कहा–

"जो प्रोखोर लिसेन्कोव के हक में हैं, हाथ उठाएं!"

सत्ताईस धनी कज्जाकों और चक्की के मालिक येगोर ने झटपट हाथ ऊंचे कर दिए। मीश्का ने इर्द-गिर्द नजर दौड़ाई और उसने भी हाथ ऊंचा कर दिया। गिनती करने वाला व्यक्ति मीश्का के बराबर आया और ऊपर से उसे देखकर उसने जोर से मीश्का का कान पकड़ लिया। मीश्का को बड़ा दर्द हुआ।

"अरे पाजी कहीं के! चल भाग यहां से वरना मरम्मत कर डालूंगा! चला है राय देने!"

इर्द-गिर्द बैठे लोग हंस दिए। गिनती करने वाला व्यक्ति मीश्का को दरवाजे तक लाया और पीठ पर ठोंक दिया। मीश्का को याद हो आया कि दादा और बाप के बीच तकरार हो जाने पर बाप ने क्या कहा था। गंदी-मंदी और फिसलनी सीढ़ियों से नीचे जाते हुए मीश्का ने भी वही शब्द दोहरा दिए–

"तुम्हें ऐसा करने का हक नहीं है!"

"ठहर, बड़ा आया है मुझे हक समझाने वाला!"

मीश्का को अपमान का कड़वा घूंट पीना पड़ा, बहुत खीझ आई।

मीश्का ने घर लौटकर आंसू बहाए और फिर मां से फरियाद की। मां ने डांट पिलाई—

"तू हर जगह घुसता क्यों फिरता रहता है! सभी जगह अपनी नाक घुसेड़ा करता है!....तेरे कारण तो नाक में दम है मेरा!"

अगले दिन सुबह सब नाश्ता करने बैठे। नाश्ता अभी खत्म भी नहीं हुआ था कि बहुत दूर से बाजे की ढम-ढम सुनाई दी। बाप ने चमचा मेज पर रखा और मूंछें पोंछते हुए कहा—

"यह तो फौजी बैंड लगता है!"

मीश्का तो हवा की तरह बेंच से गायब हो गया। ड्योढ़ी का दरवाज बंद हुआ। खिड़की से तेज कदमों की चप-चप सुनाई देती रही....

दादा और बाप बाहर अहाते में आ गए। मां खिड़की से धड़ बाहर निकालकर देखने लगी।

सड़क के सिरे पर हरी लहरों-सी लहराती हुई लाल सेना की कतारें चली आ रही थीं। आगे-आगे कुछ बैंड वाले बिगुल बजाते चले जा रहे थे और ढोलची जोरों से ढोल को ढमढमा रहा था। पूरे गांव में बैंड की आवाज़ गूंज रही थी।

मीश्का की आंखें सभी ओर दौड़ रही थीं। शुरू में तो वह खोया-खोया-सा एक ही जगह पर चक्कर काटता रहा और फिर झपटकर बैंड वालों के पास जा पहुंचा। उसके हृदय में कोई मीठी-मीठी चीज हिलोरें ले रही थी, वह मुंह तक आने को बेकरार थी....मीश्का धूल-मिट्टी से सने हुए लाल सेना के फौजियों के प्रफुल्लित चेहरों को और गाल फुला-फुलाकर बाजों से आवाज निकालते हुए बैंड वालों को देखता रहा। फिर उसने अचानक और एकबारगी यह तय कर लिया, "मैं भी जाऊंगा इनके साथ लड़ाई लड़ने!"

उसे अपना सपना याद हो आया। न जाने कहां से उसमें हिम्मत आ गई कि किनारे वाले फौजी का थैला थामकर उसने पूछा—

"आप कहां जा रहे हैं? लड़ाई लड़ने?"

"तो और क्या? लड़ने ही तो जा रहे हैं!"

"किसकी ओर से आप लड़ेंगे?"

"सोवियत सत्ता की ओर से, पगले! अच्छा, इधर आ, बीच में।"

उसने मीश्का को फौजियों की कतारों के बीच खींच लिया, किसी ने हंसते-हंसते उसकी गुद्दी पर चुटकी काट ली, किसी अन्य ने जेब में पड़ा हुआ गंदा-सा चीनी का छोटा-सा टुकड़ा निकाला और उसके मुंह में ठूंस दिया। चौक में पहुंचने पर पहली कतार में से किसी ने चीखकर कहा—

"थम जा!...."

लाल सेना के फौजी रुके, चौक में इधर-उधर बिखरे और स्कूल की बाड़ की छाया में ठंडी जगह देख सटकर लेट गए। घुटे हुए सिर वाला लाल सेना का एक लंबा-तड़ंगा फौजी मीश्का के पास आया। उसकी बगल में तलवार लटक रही थी। मुस्कराते हुए उसने पूछा–

"अरे तू कहां से आ गया इधर?"

मीश्का ने अपने चेहरे पर बड़प्पन का भाव लाकर नीचे सरकते पाजामे को खींचकर ऊपर किया।

"मैं आप लोगों के साथ लड़ाई लड़ने चलूंगा!"

"साथी बटालियन कमांडर, इसे भी सहायकों में शामिल कर लो!" एक सैनिक ने ऊंची आवाज में कहा।

सभी ओर जोर के कहकहे गूंज गए। मीश्का बार-बार पलकें झपकाता खड़ा रहा। मगर 'बटालियन कमांडर' के अजीब-से नाम वाले व्यक्ति ने भौंहें चढ़ाई और जोर से डांटते हुए कहा–

"हंसने की क्या बात है, मूर्ख? स्पष्ट है कि हम इसे अपने साथ ले चलेंगे ....मगर एक शर्त पर," बटालियन कमांडर मीश्का की ओर घूमा और बोला, "देख तेरे पाजामे में सिर्फ एक पट्टी है। ऐसे काम नहीं चलेगा। ऐसे तो तू अपने हुलिए से हमारी हेठी कराएगा....यह देख, मेरे पतलून में दो पट्टियां हैं, सभी के पतलूनों में दो हैं। जा भागकर जा, मां से दूसरी पट्टी सिलवा ला। हम तेरा यहीं इंतजार करेंगे...." इतना कहकर कमांडर बाड़ की तरफ घूमा और आंख मारते हुए उसने ऊंची आवाज में कहा, "तेरेश्चेन्को, जा, लाल सेना के नए फौजी के लिए जल्दी से बंदूक और फौजी कोट लेकर आ!"

बाड़ की छाया में लेटे हुए फौजियों में से एक उठा, टोप के छज्जे तक हाथ उठाकर उसने सलामी दी और कहा–

"जो हुक्म!...." वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ बाड़ के साथ-साथ चल दिया।

"अच्छा अब तू उड़कर जा! मां से झटपट पट्टी सिलवाकर लौट आ!"

मीश्का ने कड़ी नजर से बटालियन कमांडर की तरफ देखा–

"देखो, मुझे धोखा नहीं देना!"

"क्या बात करता है! कभी हो सकता है?...."

चौक से घर तक काफी फासला था। मीश्का फाटक तक ही दौड़ा था कि दम फूल गया। सांस लेना कठिन हो गया। फाटक के पास पहुंचने पर उसने दौड़ते-दौड़ते ही पाजामा उतार लिया। नंगे पांव जल्दी से दौड़ता हुआ तेज झोंके की तरह मकान में जा घुसा–

"मां....पाजामे की....एक और पट्टी सी दे!"

घर में खामोशी थी। अंगीठी के ऊपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। मीश्का भागता हुआ अहाते में पहुंचा, खलिहान और बागीचे में गया—न बाप, न मां, न दादा। छलांगें मारता कोठे में गया—एक बोरी पर नजर जा पड़ी। उसने चाकू लिया और उसकी लंबी डोरी काट ली। सीने की फुर्सत मीश्का को कहां थी और फिर सीना आता भी तो नहीं था। उसने झटपट उसे पाजामे में बांध लिया और कंधे पर से ले जाकर सामने की तरफ गांठ दे दी। वह भागकर खत्ती में गया।

उसने कंकड़ हटाकर लेनिन का चित्र उठाया। अपनी ओर इशारा करते लेनिन के उठे हुए हाथ को उड़ती नजर से देखा और सांस रोककर धीरे-से फुसफुसाया—

"देख लिया न?....मैं भी जा रहा हूं तुम्हारी फौज में!"

बड़ी सावधानी से उसने लेनिन की तस्वीर बरडॉक के पत्ते में लपेटी, उसे कमीज के नीचे दबा लिया और उछलता-कूदता सड़क पर आ गया। वह एक हाथ से चित्र को छाती से चिपकाए रहा और दूसरे से पाजामा संभालता गया। जब दौड़ता हुआ पड़ोसिन की बाड़ के निकट से गुजरा तो पुकारकर कहा—

"अनीसिमोव्ना!"

"क्या है?"

"हमारे घर वालों से कह देना कि खाने पर मेरा इंतजार न करें?"

"तू कहां उड़ा जा रहा है, पाजी?"

मीश्का ने हाथ हिलाकर जवाब दिया—

"फौजी नौकरी पर जा रहा हूं!"

वह भागता हुआ चौक में पहुंचा तो उसे जैसे काठ मार गया। चौक में तो आदमी का नाम-निशान तक न था। बाड़ के करीब सिगरेटों के टुकड़े, खाली डिब्बे और किसी की फटी-पुरानी पट्टियां पड़ी थीं। गांव की बिल्कुल दूसरे सिरे से बैंड की आवाज और ठोस मिट्टी की कच्ची सड़क पर चलने वालों के पैरों की धम-धम सुनाई दे रही थी।

मीश्का का गला आंसुओं से रुंध गया। वह चीख उठा और अपनी बची-बचाई पूरी ताकत समेटकर भाग खड़ा हुआ। जा मिलता, जरूर वह उनसे जा मिलता, मगर चमार के अहाते के सामने पीले रंग का दुमदार कुत्ता पसरा हुआ था। उसने गुर्राकर दांत दिखाए। मीश्का जब भागकर दूसरी सड़क पर पहुंचा तो बाजों की आवाज खो चुकी थी और पैरों की धम-धम भी।

दो दिन बाद गांव में कोई चालीस फौजियों की एक टुकड़ी आई। ये लोग घुटनों तक के भूरे फेल्ट के बूट और मजदूरों के तेल लगे हुए कोट पहने थे। बाप कार्यकारिणी समिति से दोपहर का खाना खाने घर आया तो दादा से बोला—

"बापू, खत्ती में अनाज तैयारर कर लो। अनाज-दस्ता आया है। अनाज देना होगा।"

फौजी एक-एक घर में जाते थे, कोठारों-खत्तियों में संगीनें भोंक-भोंककर जांच करते थे और छिपाया हुआ अनाज निकलवाकर एक सामाजिक भंडार में जमा करते जाते थे।

वे ग्राम-सोवियत के अध्यक्ष के घर भी आए। उनमें जो सबसे आगे-आगे था, मुंह में पाइप लगाए था। उसने दादा से पूछा—

"बड़े मियां, अनाज छिपा रखा है क्या? सच-सच बता दो!"

दादा ने दाढ़ी पर हाथ फेरा और बड़े गर्व से कहा—

"अजी क्या कहते हैं, मेरा बेटा तो खुद कम्युनिस्ट है!"

सब खत्ती में पहुंचे। पाइप वाले फौजी ने एक नजर में सारे अनाज को आंका और मुस्करा दिया।

"बड़े मियां, इनमें से इतना हमारे भंडार में पहुंचा दो, बाकी अपने परिवार की रोटी और बीज के लिए रख लो।"

दादा ने बूढ़े घोड़े को छकड़े में ज़ोता, कुढ़ते-बड़बड़ाते आठ बोरियां छकड़े में लाद दीं। अफसोस से उन्होंने हाथ झटका और सामाजिक भंडार की ओर छकड़ा बढ़ा दिया। मां को अनाज के इस तरह निकल जाने का दुख हुआ, वह कुछ रोई-धोई। मगर मीश्का ने अनाज की बोरियों की लदाई में दादा का हाथ बंटाया और फिर पादरी के बेटे वीत्का के साथ खेलने के लिए उसके घर चला गया।

मीश्का और वीत्का अभी रसोईघर में जाकर बैठे ही थे, उन्होंने कागज के घोड़े काट-काटकर फर्श पर बिछाए ही थे कि वे ही फौजी पादरी के रसोईघर में आ पहुंचे। पादरी साहब दौड़-धूप करने लगे, उनकी आवभगत को दौड़े आए लोग आदरभाव जताने लगे। उन्होंने फौजियों से आराम-कमरे में जाने को कहा। मगर पाइप वाले फौजी ने कड़ाई-रुखाई से कहा—

"खत्ती में चलिए! कहां जमा कर रखा है आपने अनाज?"

भीतर वाले कमरे से पादरी की बीवी लपककर वहां आई। उसके बाल अस्त-व्यस्त हुए पड़े थे। अपने होंठों पर चोर की-सी हंसी लाकर उसने कहा—

"विश्वास कीजिए जनाब, हमारे घर में तो अनाज का एक दाना भी नहीं है! मेरे पति ने अपने श्रद्धालुओं के घरों में अभी फेरा नहीं किया...."

"तहखाना है आपके यहां?"

"नहीं, हमारे यहां तहखाना नहीं है....हम तो खत्ती में ही पहले अनाज जमा करते थे...."

मीश्का को याद हो आया कि कैसे वह वीत्का के साथ रसोईघर से एक बड़े-से तहखाने में जाया करता था। पादरी की बीवी की तरफ मुंह करके उसने कहा—

"रसोईघर से मैं और वील्का तो तहखाने में उतरा करते थे, आप भूल गईं क्या?"

पादरी की बीवी के चेहरे का रंग उड़ गया, मगर वह हंस दी—

"तू भूल रहा है छोकरे! वील्का, तुम लोग बाहर बागीचे में जाकर खेलो!"

पाइप वाले फौजी ने आंखें झपकाईं और मीश्का की ओर देखकर मुस्कराया—

"लड़के, किधर से रास्ता है उस तहखाने का?"

पादरी की बीवी बेचैनी से उंगलियां चटकाती हुई बोली—

"खूब हैं आप भी, इस बेवकूफ छोकरे की बात पर विश्वास कर रहे हैं! मैं आपको यकीन दिलाती हूं कि हमारे घर में तहखाना नहीं है!"

पादरी ने अपने चोगे के छोर झटकते हुए कहा—

"आइए, कुछ जलपान कीजिए! चलिए कमरे में!"

पादरी की बीवी ने मीश्का के पास से गुजरते हुए उसके हाथ पर जोर की चुटकी काटी और मुस्कराकर बड़े प्यार से कहा—

"जाओ बच्चो, बागीचे में जाओ! यहां गड़बड़ी नहीं करो!"

फौजियों ने आंखों में इशारे किए और रसोईघर में इधर-उधर चक्कर काटते हुए बंदूकों के दस्तों से फर्श को ठोक-बजाकर देखने लगे। दीवार के पास से उन्होंने मेज खिसकाई और टाट उठाया। पाइप वाले फौजी के फर्श का एक तख्ता उलटा, तहखाने में झांका और सिर हिलाते हुए कहा—

"शर्म नहीं आती आप लोगों को? कह रहे थे कि अनाज का एक दाना भी नहीं है और तहखाने में ऊपर तक गेहूं भरा पड़ा है!"

पादरी की बीवी ने मीश्का को ऐसी काटती नजर से देखा कि उसका कलेजा कांप उठा। उसका मन हुआ कि झटपट भाग ले घर को। वह उठा और आंगन में आया। पादरी की बीवी भी लपकती हुई उसके पीछे-पीछे ड्योढ़ी में पहुंची और उस पर झपटी। मीश्का को बालों से पकड़कर वह उसे फर्श पर घसीटने लगी।

मीश्का ने बड़ी मुश्किल से अपने बाल छुड़वाए और जान छोड़कर घर की तरफ भागा। आंसू थे कि झड़ी बनकर बरस रहे थें। मां को उसने रो-रोकर सारा हाल सुनाया और वह तो बस सिर थामकर रह गई—

"हाय रे, क्या करूं मैं तेरा....दूर हो जा मेरी आंखों के सामने से, वरना मार-मारकर चटनी बना दूंगी!...."

इस दिन के बाद तो यह नियम बन गया कि जब कोई मीश्का का अपमान करता, वह खत्ती में जा घुसता। पत्थर हटाता, बरडॉक के पत्ते से चित्र निकालता, आंसुओं से चित्र को भिगोता और लेनिन को अपना दुख-दर्द सुनाता, अपमान करने वाले के खिलाफ शिकवा-शिकायत करता।

इसी तरह एक सप्ताह बीत गया। मीश्का को ऊब अनुभव होने लगी। साथ

खेलने वाला कोई नहीं था। अड़ोस-पड़ोस के बच्चे कन्नी काटते। 'हरामी' के साथ अब बड़ों से सुनी-सुनाई एक उपाधि और जोड़ दी गई थी। लड़के पीछे से आवाजें कसते–

"अरे ओ कम्युनिस्ट! ओ सड़े अंडे, इधर देख!"

एक दिन क्या हुआ कि मीश्का सांझ गहराने के पहले तालाब से घर लौटा। वह अभी घर के भीतर नहीं पहुंचा था कि बाप को तीखी आवाज में कुछ कहते सुना। मां गिड़गिड़ाती हुई उसी तरह विलाप कर रही थी जैसे कि किसी के मर जाने पर किया जाता है। मीश्का ने दरवाजे में दाखिल होते ही देखा कि बाप अपना फौजी कोट तह कर रहा है और बड़े बूट कस रहा है।

"बापू, तुम कहां चले?"

बाप हंस दिया। उसने कहा–

"बेटा, तू अपनी मां को समझा-बूझा....इसके रोने-धोने से मेरा कलेजा फटा जा रहा है। मैं लड़ाई पर जा रहा हूं और यह मुझसे चिपकी जा रही है!"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा, बापू!"

पिता ने पेटी कसी और फीतों वाली टोपी पहनी।

"तू भी कमाल का छोकरा है! एक ही साथ तो हम दोनों को नहीं जाना चाहिए घर से! मैं लौट आऊंगा तब तुम जाना, वरना जब फसल पकेगी तो कौन काटेगा? मां तुम्हारी घर के काम-काज में उलझी रहती है और दादा हो गए बूढ़े...."

पिता से विदा होते समय मीश्का ने आंसू अंदर ही अंदर पी लिए। इतना ही नहीं, मुस्करा तक दिया। मां, पहले की भांति, बाप की गर्दन से लिपट गई। बाप ने जबर्दस्ती उससे अपने को आजाद किया। दादा ने केवल आह भरी। लड़ाई पर जाने वाले को चूमते हुए उन्होंने उसके कान में फुसफुसाकर कहा–

"फोमा....मेरे प्यारे बेटे!....अच्छा हो कि तुम न जाओ! तुम्हारे बिना, शायद तुम्हारे बिना भी काम चल जाए! अगर तुम मारे गए तो हम कहीं के न रहेंगे!...."

"हटाओ बापू....यह बात ठीक नहीं है। अगर सभी बीवियों की गोद में छिपकर बैठे रहेंगे तो हमारी सत्ता की रक्षा कौन करेगा?"

"अगर ऐसा ही ठीक समझते हो तो जाओ।"

दादा ने मुंह दूसरी ओर किया और चुपके-से आंसू पोंछ डाले। घर के लोग बाप को कार्यकारिणी के दफ्तर तक पहुंचाने गए। वहां आंगन में कोई बीस आदमी जमा थे, बंदूकें लिए हुए। मीश्का के बाप ने भी बंदूक ली और आखिरी बार मीश्का को चूमा। फिर बाकी लोगों के साथ सड़क पर कदम बढ़ाता हुआ वह भी गांव के बाहर की ओर चला गया।

मीश्का दादा के साथ घर लौटा। उसकी मां मुश्किल से अपने को संभालती

और लड़खड़ाती हुई पीछे-पीछे चली आ रही थी। गांव में कहीं-कहीं कुत्ते भौंक रहे थे, कहीं-कहीं रोशनी नजर आ रही थी। गांव पर रात का अंधेरा इस तरह छाया जा रहा था मानो किसी बुढ़िया ने काली ओढ़नी ओढ़ ली हो। बूंदा-बांदी हो रही थी, गांव से कुछ दूर स्तेपी में बिजली कौंध-कौंध उठती थी और रह-रहकर बादलों की गरज सुनाई पड़ती थी।

वे घर के निकट पहुंच गए। मीश्का रास्ते भर चुप रहा, मगर अब उसने पूछा–

"दादा, बापू किससे लड़ने गए हैं?"

"अरे, छोड़ भी मेरा पिंड!"

"दादा!"

"क्या है?"

"किससे लड़ेंगे मेरे बापू?"

दादा ने फाटक की चटखनी लगाते हुए जवाब दिया–

"हमारे गांव के पास कुछ दुष्ट लोगों ने मुसीबत कर रखी है। लोग उसे 'गिरोह' बताते हैं, मगर मैं तो यही समझता हूं कि कोई डाकू-लुटेरे होंगे....तुम्हारा बाप उन्हीं से लड़ने गया है।"

"बहुत हैं क्या वे लोग दादा?"

"सुना है कि कोई दो सौ हैं....अच्छा अब जाकर सो जा। तुझे क्या लेना-देना है इन बातों से!"

रात को आवाजों के शोर से मीश्का की आंख खुल गई। उसने अपना बिस्तर टटोला तो दादा को गायब पाया।

"दादा, कहां हो तुम?"

"चुपचाप पड़ रह और सो जा!"

मीश्का उठा और अंधेरे में रास्ता टटोलता हुआ खिड़की तक जा पहुंचा। दादा सिर्फ जांघिया पहने हुए बेंच पर बैठे थे, सिर उनका खिड़की से बाहर निकला हुआ था और वे बहुत गौर से आवाजें सुन रहे थे। मीश्का ने भी कान लगा दिए। रात के गहरे सन्नाटे में उसे गांव के परे बार-बार गोली चलने की आवाज साफ सुनाई दी। उसके बाद तो गोलियों की बौछार ही लग गई।

"तड़ाक! तड़-तड़-तड़! तड़-तड़-तड़ाक!"

ऐसा लगता था मानो कोई कीलें ठोंक रहा हो।

मीश्का का दिल दहल उठा। वह दादा से जा लिपटा और उसने पूछा–

"यह मेरे बापू गोली चला रहे हैं न?"

दादा चुप हो गए और मां फिर से विलाप करने लगी।

पौ फटने तक गोलियां चलती रहीं और उसके बाद सन्नाटा हो गया। मीश्का वहीं बेंच पर सिमट-सिमटाकर लेट गया और बेचैन, बोझल और दुख की नींद सो

गया। उजाला हुआ तो कार्यकारिणी समिति के कार्यलय की ओर घुड़सवारों का एक दल तेजी से आता दिखाई दिया। दादा ने मीश्का को जगाया और खुद बाहर भागे।

कार्यकारिणी समिति के आंगन में धुएं का खंभा-सा उठा और आग की लपलपाती हुई लपटें इमारतों की ओर बढ़ चलीं। सड़कों पर घुड़सवार घोड़े कुदाते फिर रहे थे। एक घुड़सवार अहाते के पास आया और उसने पुकारकर दादा से पूछा—

"बूढ़े, घोड़ा है?"

"हां है...."

"जोतकार गांव के बाहर चला जा! वहां झाड़ियों में तुम्हारे कम्युनिस्ट पड़े है! ....जा, ले आ लादकर! सगे-संबंधियों से कह देना उनकी मिट्टी ठिकाने लगा लें!"

दादा ने झटपट घोड़े को जोता, कांपते हाथों से लगामें संभालीं और तेजी से अहाते के बाहर निकल गए।

गांव में तो हाय-दुहाई मच गई। डाकू घोड़ों से उतरकर खलिहानों से सूखी घास निकाल लाए, भेड़-बकरियां काटने लगे। एक डाकू अनीसिमोव्ना के अहाते के करीब घोड़े से नीचे कूदा और घर में जा घुसा। मीश्का ने अनीसिमोव्ना को भर्राई आवाज में रोते-कलपते सुना। डाकू तलवार लिए हुए धड़ाधड़ बाहर आया, सीढ़ियों पर बैठ गया और उसने जूते उतारे। उसने अनीसिमोव्ना के फूलदार और पर्वों के अवसरों पर पहने जाने वाले शॉल के दो टुकड़े किए, अपनी गंदी पट्टियां उतारीं और उनकी जगह उन्हें अपनी टांगों पर लपेट लिया।

मीश्का कोठे में जाकर बिस्तर पर लेट गया। उसने सिर तकिए में गड़ा दिया और तभी उठा जब फाटक चरमरा उठा। भागा हुआ दरवाजे पर गया। देखा कि दादा की दाढ़ी आंसुओं से तर है और वह घोड़े को अहाते के अंदर ला रहे हैं।

पीछे छकड़े में एक आदमी नंगे पांव पड़ा था। उसकी बांहें फैली हुई थीं, छकड़ा जब हिचकोले खाता तो उसका सिर दाएं-बाएं टकराता और छकड़े के तख्तों पर गाढ़ा-गाढ़ा काला खून रिस रहा था....

मीश्का कांपते पैरों से छकड़े के करीब गया। उसने चेहरे पर नजर डाली तो तलवार के वारों से बिल्कुल टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा था। दांत बाहर निकले हुए थे, हड्डी समेत कटा हुआ गाल लटक रहा था और बाहर को निकली, खून से लथपथ आंख पर हिलती-डुलती हुई बड़ी-सी हरी मक्खी बैठी थी।

मीश्का नहीं पहचान पाया कि वह लाश किसकी है। वह डर से कुछ-कुछ कांप रह था। उसने इस व्यक्ति की छाती को देखा, खून से तर-बतर नीली और सफेद धारियों वाली कमीज की ओर उसका ध्यान गया और वह इस तरह कांप उठा मानो किसी ने पीछे से उसकी टांगों पर कसकर चोट की हो। फटी-फटी आंखों से उसने एक बार फिर उस निश्चल और स्याह पड़े हुए चेहरे को देखा और उछलकर छकड़े पर जा पहुंचा।

"उठो बापू! उठो मेरे प्यारे बापू!" वह छकड़े से नीचे गिर पड़ा, उसने भाग जाना चाहा मगर टांगें जवाब दे गईं। हाथों-पैरों के बल रेंगता हुआ वह बड़ी मुश्किल से घर के दरवाजे तक पहुंचा और लुढ़क गया।

दादा की आंखें अंदर को धंस गई थीं। सिर हिलता और हिचकोले खा रहा था, होंठ हिलते-डुलते थे, मगर उनसे कोई आवाज नहीं निकलती थी।

दादा देर तक चुपचाप मीश्का का सिर सहलाते रहे। फिर बिस्तर पर औंधी पड़ी हुई मां की ओर देखते हुए उन्होंने फुसफुसाकर मीश्का से कहा—

"चल बेटे, बाहर अहाते में चलें...."

दादा ने मीश्का का हाथ थामा और दरवाजे की ओर चले। कोठे का दरवाजा लांघते हुए मीश्का ने आंखें मूंद लीं, वह सिहर उठा। कोठे में मेज पर बाप की लाश पड़ी थी, गुमसुम और गंभीर। उसका खून धोकर साफ किया जा चुका था, मगर मीश्का अपनी आंखों के सामने शीशे की तरह पथराई और खून से सनी वही आंख देख रहा था जिस पर बड़ी हरी मक्खी बैठी थी।

दादा ने काफी देर लगाकर कुएं से रस्सी खोली, फिर अस्तबल की ओर गए और घोड़े को बाहर लाए। न जाने क्यों अपनी आस्तीनों से उन्होंने घोड़े के मुंह से झाग पोंछी। फिर उसे लगाम पहनाई और कान लगाकर बाहर की आवाजें सुनते रहे। गांव में खूब शोर मचा हुआ था, ठहाके गूंज रहे थे। अहाते के करीब से दो घुड़सवार गुजरे, अंधेरे में उनकी सिगरेटों की चिंगारियां चमकीं और उनकी यह बातचीत सुनाई पड़ी—

"क्यों, कैसी रही, करवा दी न हमने भूखों से इनकी पिटाई!....अब दूसरी दुनिया में पहुंचकर याद करेंगे कि लोगों से अनाज छीनने का क्या नतीजा होता है!...."

घोड़ों की टापों की आवाज जब बिल्कुल बंद हो गई तो दादा ने मीश्का के कान में धीरे से कहा—

"देख बेटे, मैं हूं बूढ़ा आदमी....घोड़े की सवारी मेरे बस की बात नहीं....तुझे इस पर चढ़ा देता हूं, तू भगवान का नाम लेकर प्रोनीन गांव को चला जा....रास्ता मैं तुझे दिखा दूंगा....वहां फौज के वे जवान पड़े होंगे जो बैंड बजाते हुए हमारे गांव से गुजरे थे....उनसे कहना कि तुरंत हमारे गांव की ओर चले आएं—यहां डाकुओं का गिरोह है!....समझ गए?...."

मीश्का ने चुपचाप सिर हिलाकर हामी भरी। दादा ने मीश्का को घोड़े पर बिठाया, रस्सी से दोनों पांव जीन के साथ बांध दिए ताकि वह गिर न पड़े और खलिहान, तालाब और डाकुओं के अड्डे के करीब से होते हुए घोड़े को स्तेपी में लाए।

"देख बेटा, उस टीले की तरफ घाटी चली गई है, उसके साथ-साथ घोड़ा

चलाते जाना, इधर-उधर नहीं मुड़ना! सीधा गांव में जा पहुंचेगा। अच्छा अब चल दे मेरे लाल!"

दादा ने मीश्का को चूमा और घोड़े को धीरे-से थपथपाया।

रात चांदनी थी, उजली-उजली थी। घोड़ा हल्के कदमों से दौड़ने और नथने फुलाने लगा। पीठ के बोझ को हल्का महसूस करते हुए वह संभालकर कदम रखने लगा। मीश्का उसे लगामें छुआता जाता था, गर्दन थपथपाता था और धचकों से उछल-उछल जाता था।

अनाज की हरी घनी बालों के बीच बटेर मस्ती में चहक रहे थे। घाटी की तह में झरने का पानी अपना झर-झर का गीत अलाप रहा था। हवा में कुछ-कुछ सिहरन थी।

स्तेपी में अकेले होने से मीश्का को डर लगने लगा। उसने दोनों बांहें घोड़े की गर्म-गर्म गर्दन के गिर्द डाल दीं और उसका ठिठुरता-कांपता छोटा बदन घोड़े से चिपक गया।

घाटी ऊपर की ओर जाती, नीचे ढलती और फिर ऊपर की ओर ऊंची उठती। मीश्का को पीछे की ओर देखने से डर लगता। वह कुछ फुसफुसाता हुआ यह प्रयत्न कर रहा था कि उसके दिमाग में किसी तरह का विचार न आए। सन्नाटा उसके कानों में सांय-सांय बज रहा था, उसने आंखें मूंद रखी थीं।

घोड़े ने सिर झटका, नथने फुलाए और कदम तेज कर दिए। मीश्का ने जरा-सी आंख खोलकर नीचे की ओर देखा। पहाड़ी के दामन में उसे मद्धिम रोशनियां दिखाई दीं। हवा के झोंकों के साथ कुत्तों के भौंकने की आवाज भी सुनाई दी।

घड़ी भर में खुशी के मारे मीश्का के दिल में गर्मी आ गई। उसने घोड़े को पैर से एड़ लगाई और टिटकारी भरी–

"टिन-ट-ट-ट!"

कुत्तों के भौंकने की आवाज निकट आ गई। टीले पर पवनचक्की के पंखों की धुंधली-सी रेखाएं नजर आईं।

"कौन जा रहा है यह?" पवनचक्की से आवाज आई।

मीश्का ने फिर चुपचाप घोड़े से आगे बढ़ते रहने का आग्रह किया। ऊंघते हुए गांव में मुर्गों की बांग सुनाई दी।

"रुक जाओ!....कौन जा रहा है?....गोली मार दूंगा!...."

मीश्का डर गया, उसने लगामें खींचीं। मगर घोड़े को करीब ही घोड़ों की उपस्थिति की गंध आ गई, वह जोर से हिनहिनाया और सवार की परवाह न करते हुए सरपट दौड़ चला।

"ठहरो!"

पवनचक्की के करीब से गोलियों की तड़तड़ सुनाई दी। मीश्का की चीख घोड़ों

की टापों की आवाज में डूब गई। उसके घोड़े का दम फूल गया, वह पिछली टांगों के बल खड़ा हुआ और दाएं पहलू ढह पड़ा।

मीश्का अब अपनी टांग में बहुत ही जोर का, जानलेवा दर्द महसूस कर रहा था। चीख उसके होंठों पर जमकर रह गई। घोड़ा मीश्का की टांग पर अधिकाधिक बोझ डालता गया।

घोड़ों की टापें करीब आईं। तलवारें बांधे हुए दो सवार करीब पहुंचे, घोड़ों से कूदे और मीश्का पर झुक गए।

"हाय गज़ब हो गया, यह तो बेचारा कोई छोकरा है!...."

"कहीं जान तो नहीं ले ली?"

किसी ने कमीज के अंदर हाथ ले जाकर मीश्का के दिल की धड़कन जांची। मीश्का के मुंह के पास तंबाकू के लहरे आ रहे थे। किसी ने खुश होते हुए कहा–

"जिंदा है!....घोड़े ने कहीं टांग न कुचल डाली हो?...."

बेहोश होता हुआ मीश्का फुसफुसाया–

"गांव में गिरोह है....बापू को मार डाला....समिति का कार्यालय जला दिया, दादा ने कहा है कि आप फौरन वहां पहुंचें!"

मीश्का की धुंधलाती हुई आंखों के सामने रंगीन चक्कर-से घूमने लगे....

अपने बापू को उसने सामने से गुजरते देखा, लाल मूंछों को मरोड़ते और हसंते हुए। मगर उसकी आंख पर एक बड़ी-सी झूलती हुई हरी मक्खी बैठी थी। फिर दादा सामने आए, सिर हिलाते और बिगड़ते हुए। इसके बाद मां दिखाई पड़ी। सबके बाद उसके सामने उभरा छोटे कद का चौड़े माथे वाला व्यक्ति जिसका हाथ उठा था। उसका हाथ सीधे मीश्का की ओर इशारा कर रहा था।

"साथी लेनिन!...." मीश्का अपनी फटी-सी आवाज में पुकार उठा। जोर लगाकर उसने सिर ऊपर उठाया, वह मुस्कराया–और उसने अपने दोनों हाथ लेनिन की ओर बढ़ा दिए।

चरवाहा

धूप से झुलसी भूरी स्तेपी से सोलह दिनों से लू चल रही थी।

जमीन जलकर कोयला बन गई, घास पीली पड़ गई, राजमार्ग के किनारे बने कुएं सूख गए, अनाज की बालियां पूरी खुलने से पहले ही मुरझाकर बूढ़ों की तरह झुक गईं।

दोपहर को ऊंघते गांव में घंटे की टन-टन गूंजने लगी।

कड़कड़ाती धूप और नीरवता का राज्य था। बस धूल उड़ाते कदमों की आहट, ऊबड़-खाबड़ सड़क पर संभल-संभलकर चलते बूढ़ों की लाठियों की ठक-ठक सुनाई पड़ रही थी।

घंटा गांव वालों को सभा का बुलावा दे रहा था। सभा में चरवाहे की नियुक्ति कि सवाल को हल करना था।

कार्यकारिणी समिति में लोग मक्खियों की तरह भिनभिना रहे थे, तंबाकू का धुंआ भरा था।

अध्यक्ष पेंसिल के टुकड़े से मेज को ठकठकाकर बोला—

"नागरिको! पुराने चरवाहे ने हमारे ढोर चराने से इंकार कर दिया, कहता है कि तनखा कम है। हम, कार्यकारिणी वाले, ग्रिगोरी फ्रोलोव को इस काम पर रखने की सिफारिश करते हैं। यहीं पैदा हुआ, अनाथ है, कोम्सोमोल का सदस्य है...बाप उसका, जैसा कि सब जानते हैं, मोची था। वह बहन के साथ रहता है, पेट भरने को उनके पास कुछ है नहीं। मेरे ख्याल से आप लोग उसकी हालत पर रहम करके उसे ढोर चराने का काम दे दोगे।"

बुड्ढे नेस्तेरोव से चुप न रहा गया, चुलबुलाकर वह बोला—

"हम यह नहीं कर सकते....झुंड बड़ा है, और वह भी कोई चरवाहा है!.... दूर ले जाकर चराना है क्योंकि आस-पास चारा है नहीं और उसे यह काम आता नहीं। पतझड़ तक आधे बछड़े भी नहीं बचेंगे...."

इग्नात चक्की वाला, घाघ बुड्ढा, विद्वेष पूर्णस्वर में शक्कर घोलकर बोला—

"चरवाहा हम कार्यकारिणी के बिना भी ढूंढ़ लेंगे, यह हमारा अपना मामला है....और आदमी हमें ऐसा चुनना चाहिए जो बूढ़ा, भरासेमंद हो, ढोरों की देखभाल करना जानता हो...."

"ठीक कहा, दादा...."

"अगर बुड्ढ़े को रखोगे तो और भी जल्दी बछड़ों से हाथ धो बैठोगे....अब वह जमाना नहीं रहा, सब जगह चोर-उचक्कों की कोई कमी नहीं...." अध्यक्ष दृढ़ता के साथ बोला। पीछे से लोगों ने उसका समर्थन किया—

"बुड्ढ़े से काम नहीं चलेगा....यह भी ध्यान में रखो कि ये गायें नहीं बल्कि जवान बछड़े हैं। कुत्ते की तरह फुर्तीली टांगों की जरूरत है उन्हें चराने के लिए। झुंड विदक गया, तो बुड्ढा दौड़ते हुए अपनी बत्तीसी खो बैठेगा...."

ठहाके गूंज उठे, पर बुड्ढा इग्नात अपनी बात मनवाने के लिए दबे स्वर में बोला—

"कम्युनिस्टों का यहां कोई काम नहीं....यह काम तो पूजा-पाठ के साथ किया जाता है, ऐसे-वैसे नहीं...." और खूसट बुड्ढे ने अपनी टांट पर हाथ फेरा।

पर अध्यक्ष फौरन सख्ती से बोला—

"इस तरह की बातें नहीं चलेंगी....इस तरह की....ऐसी बातों के लिए.... सभा से बाहर निकाल दूंगा...."

प्रातः, जब चिमनियों से मैली रुई के चिथड़ों की तरह निकलकर धुआं चौक में फैलकर छाने लगता है, ग्रिगोरी ने डेढ़ सौ ढोरों का झुंड जमा किया और गांव की गलियों से हांककर सलेटी, मनहूस टीले की ओर चल पड़ा।

स्तेपी भूरी फुंसियों की तरह मारमोटों के बिलों से ढकी थी, मारमोट चौकन्ने होकर सीटियां-सी बजा रहे थे; घाटियों की नीची घास में दुबके हुकना पक्षी अपने रुपहले डैने चमकाते हुए फुर्र से उड़ रहे थे।

झुंड शांति से जा रहा था। झुर्रीदार पपड़ी से ढकी जमीन पर बछड़ों के खुर बारिश की तरह टप-टप कर रहे थे।

ग्रिगोरी के साथ उसकी बहन दून्या मददगार की हैसियत से जा रही थी। उसका अंग-अंग—धूप से सांवले गाल, आंखें, होंठ—सब हंस रहे थे, उसे सत्रहवां साल लगा था और सत्रह साल की उम्र में तो बात-बात पर हंसी आती है—भाई के फूले मुंह और लंबे कानों वाले बछड़ों को देखकर, जो जंगली घास चबाते चल रहे थे, उसे हंसी आ रही थी, इस बात तक पर हंसी आ रही थी कि दो दिन से उन्हें रोटी का एक टुकड़ा तक नसीब नहीं हुआ।

पर ग्रिगोरी नहीं हंस रहा था। फटी-पुरानी टोपी के नीचे से ग्रिगोरी का झुर्रियों से ढका चौड़ा माथा दिखाई पड़ रहा था, आंखों में थकान की झलक थी; मानो वह उन्नीस बरस का नहीं बल्कि बूढ़ा हो चला हो।

चित्तीदार लहरों की तरह उमड़ता झुंड रास्ते के किनारे-किनारे चला जा रहा था।

ग्रिगोरी ने पीछे छूटे बछड़ों को सीटी बजाकर उकसाया और दून्या की ओर मुड़कर बोला—

"पतझड़ तक, दून्या, अनाज कमा लेंगे और फिर शहर चले जाएंगे। मैं मजदूर फैकल्टी में भर्ती हो जाऊंगा और तेरे लिए भी कोई प्रबंध कर दूंगा....शायद किसी कोर्स-वोर्स में दाखिला दिलवा दूंगा....शहर में, दून्या, बहुत किताबें होती हैं और रोटी भी वहां साफ होती है यहां की तरह घास-फूस मिली नहीं।"

"पेर पैसे कहां से लाएंगे....शहर जाने के लिए?"

"तू भी बड़ी भोंदू है....हमें बीस पूद[1] गेहूं मिलेगा, क्या यह पैसे नहीं हैं.... पूरे रूबल के हिसाब से एक-एक पूद बेच देंगे, फिर बाजरा और उपले भी बेच देंगे।"

ग्रिगोरी रुककर चाबुक की मूठ से सड़क की धूल पर हिसाब-किताब करने लगा।

"ग्रिगोरी, हम खाएंगे क्या? रोटी बिल्कुल नहीं है...."

"मेरे झोले में पुए का सूखा टुकड़ा बचा है।"

"आज तो खा लेंगे पर कल क्या करेंगे?"

"कल गांव से हमारे लिए आटा आ जाएगा....अध्यक्ष ने वायदा किया है...."

दोपहर का सूरज आग बरसा रहा था। ग्रिगोरी की टाट से बनी कमीज पसीने से तर होकर उसके मोढ़ों से चिपक गई।

ढोरों का झुंड बेचैनी से चला जा रहा था, डांस-मक्खियां बछड़ों को काट रही थीं, तपी हवा ढोरों के रंभाने और डांसों के भिनभिनाने से गूंज रही थी।

शाम को सूर्यास्त से पहले वे बाड़े के पास पहुंच गए। पास ही में जोहड़ था और बारिशों के कारण गले फूस की कुटिया थी।

ग्रिगोरी दौड़कर आगे गया और हांफते हुए उसने बाड़े का टहनियों से बना फाटक खोल दिया।

वह बछड़ों को गिनता हुआ एक-एक करके फाटक के काले चौकोर के भीतर हांक रहा था।

2

जोहड़ के पास के टीले पर उन्होंने नई कुटिया बनाई। दीवारों पर गोबर लीपा और ग्रिगोरी ने फूस का छप्पर डाल दिया।

अगले दिन अध्यक्ष घोड़े पर सवार होकर आया। वह आधा पूद मकई का आटा और एक झोला बाजरा लाया।

छांव में बैठकर उसने सिगरेट सुलगाई और बोला—

"लड़का तू भला है, ग्रिगोरी। बस, किसी तरह झुंड की रखवाली कर ले, पतझड़ में हम क्षेत्रीय केंद्र चलेंगे। वहां से शायद तुझे पढ़ने के लिए भिजवाने का

---

1. पूद—पुराना रूसी तौल जो 16 किलोग्राम के बराबर होता था।

प्रबंध हो जाए....वहां लोक शिक्षा विभाग में मेरी जान-पहचान का एक आदमी है, वह मदद कर देगा...."

ग्रिगोरी का चेहरा खुशी से चमक उठा। विदा करते समय उसने अध्यक्ष को घोड़े पर चढ़ने में मदद दी और कसकर हाथ मिलाया। बड़ी देर तक वह घोड़े के खुरों से उड़ती धूल के गुबार को देखता रहा।

प्रातःकालीन बयार से कुछ राहत पाने के बाद दोपहर को सूखी स्तेपी का तपती गर्मी से दम घुटने लगता। पीठ के बल लेटकर ग्रिगोरी नीली-सी धुंध से ढके टीले को देखता, उसे लगता कि स्तेपी एक जीवधारी के समान है और वह गांवों, कस्बों और शहरों के भारी बोझ से कष्ट झेल रही है। लगता है कि धरती की छाती सांस लेते हुए निरंतर हिल रही है, और कहीं नीचे, भूगर्भ में कोई अज्ञात जीवन पूरी गति से चल रहा है।

और दिन के उजाले में भी उसका दिल दहल जाता।

नजरों से टीलों की अपार शृंखला को नापता, उन पर छाई धुंध, कत्थई घास पर फैले झुंड को देखता और सोचता कि वह इस दुनिया से कटकर कहीं दूर चला गया है।

शनिवार की शाम को ग्रिगोरी ने ढोरों को बाड़े में बंद किया। दून्या कुटिया के पास आग जलाकर बाजरे और खुशबूदार जंगली साग की खिचड़ी बना रही थी।

ग्रिगोरी आग के पास बैठ गया और सौंधी गंध छोड़ते उपलों को चाबुक की मूठ से कुरेदकर बोला—

"ग्रीशा की बछिया बीमार पड़ गई। मालिक को इसकी खबर पहुंचवानी चाहिए।"

"मैं जाऊं गांव को?" दून्या ने कृत्रिम उदासीनता से पूछा।

"जरूरत नहीं है। अकेला झुंड को नहीं संभाल पाऊंगा...." मुस्कराकर पूछा, "क्या लोगों से मिलने को जी कर रहा है?"

"हां, ग्रिगोरी भइया....एक महीने से स्तेपी में रह रहे हैं, बस एक बार किसी आदमी के दर्शन हुए। अगर पूरी गर्मी हमने यहीं बिता दी तो बोलना ही भूल जाएंगे...."

"सब्र कर, दून्या....पतझड़ में शहर चले जाएंगे। हम दोनों पढ़ेंगे और पढ़ाई पूरी करके यहां लौटेंगे। विज्ञान जैसे कहता है वैसे खेती करना शुरू करेंगे, नहीं तो यहां कितना अंधेरा है, लोग सोए से पड़े हैं....सब अनपढ़ हैं....किताबें नहीं हैं...."

"हमें भर्ती नहीं करेंगे....हम भी तो अनपढ़ हैं...."

"हमें ले लेंगे। सर्दियों में जब मैं कस्बे में गया था, मैंने कोम्सोमोल इकाई के सचिव के यहां लेनिन की किताब पढ़ी थी। उसमें कहा गया है कि सत्ता सर्वहारा

की है, और पढ़ाई के बारे में भी लिखा है कि उनको पढ़ना चाहिए जो गरीबों की संतान हैं।"

ग्रिगोरी घुटनों के बल उचका, उसके गालों पर लपटों का लाल प्रकाश चमका।

"हमें पढ़ना चाहिए ताकि अपने जनतंत्र का काम चलाना सीख सकें। शहरों में तो सत्ता मजदूरों के हाथों में है, पर हमारे यहां कस्बे का अध्यक्ष कुलक है और गांवों में भी अमीर लोग अध्यक्ष बन बैठे हैं...."

"ग्रिगोरी, मैं कपड़े धोकर, महरी का काम करके कमाऊंगी और तुम पढ़ना...."

उपले धुआं छोड़ते, फुफकारते सुलग रहे थे। स्तेपी ऊंघती मौन पड़ी थी।

3

क्षेत्रीय केंद्र जाने वाले मिलीशियामैन के हाथ कोम्सोमोल इकाई के सचिव पोलीतोव ने ग्रिगोरी को कस्बे आने का बुलावा भेजा था।

ग्रिगोरी पौ फटने से पहले ही रवाना हो गया और दोपहर को टीले से उसे गिरजाघर का घंटा और पुआल व टीन की छतों वाले मकान दिखाई पड़े।

बिवाइयों के भरे पैरों को घसीटता हुआ वह चौक पर पहुंचा।

क्लब पादरी के घर में था। ताजी पुआल की सुगंध छोड़ती नई चटाइयों पर चलकर उसने बड़े कमरे में प्रवेश किया।

खिड़कियों के पट बंद होने के कारण कमरे में धुंधला-सा प्रकाश था। खिड़की के पास पोलीतोव रंदा चला रहा था—चौखट बना रहा था।

"सुना है मैंने, भाई, सुना है...." मुस्कराकर अपना पसीजा हाथ बढ़ाकर वह बोला। "चलो और क्या कर सकते हैं! मैंने क्षेत्रीय केंद्र से पता करवाया था—वहां तेल पेरने की फैक्टरी में जवान लड़कों की जरूरत थी, पता चला कि उन्होंने जरूरत से ज्यादा बारह लोगों को भर्ती कर लिया....अभी झुंड की रखवाली कर लो और पतझड़ में तुम्हें पढ़ने के लिए भेज देंगे।"

"गनीमत है कि यह काम ही मिल गया....गांव के कुलक मुझे कतई भी चरवाहे का काम नहीं सौंपना चाहते थे....कहते थे कोम्सोमोल का है, अधर्मी, पूजा-पाठ के बिना चराएगा...." ग्रिगोरी ने थकान भरी हंसी के साथ बताया।

पोलीतोव आस्तीन के बुरादे को हटाकर खिड़की के दासे पर बैठ गया। पसीने से भीगी भौंहों को सिकोड़कर वह ग्रिगोरी को निहारने लगा।

"ग्रिगोरी, तुम बहुत दुबले हो गए....राशन-पानी का क्या हाल है तुम्हारे पास?"

"पेट भरने को है।" -

दोनों चुप हो गए।

"चलो, मेरे यहां चलें। तुम्हें कुछ पढ़ने को दूंगा—क्षेत्रीय केंद्र से अखबार और किताबें मिली हैं।"

वे कब्रिस्तान से सटी सड़क पर जा रहे थे। राख के सलेटी ढेरों में मुर्गियां नहा रही थीं, कहीं ढेंकली चरमरा रही थी और बस कानों में सन्नाटा गूंज रहा था।

"तुम आज यहीं रुक जाना। सभा होगी। लड़के तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे कि ग्रिगोरी कहां है, क्या हाल-चाल हैं उसके? उनसे भी मिल लोगे....आज मैं अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के बारे में व्याख्यान दूंगा....रात को मेरे यहां सोना और कल चले जाना। ठीक है?"

"मैं रात को नहीं ठहर सकता। दून्या अकेली झुंड को नहीं संभाल पाएगी। सभा में जाऊंगा और जैसे ही खत्म होगी रात को ही चला जाऊंगा।"

पोलीतोव की ड्योढ़ी में ठंडक थी।

सूखे सेबों की मीठी सुगंध और दीवारों पर टंगे जुओं और रासों से घोड़े के पसीने की बू आ रही थी।

कोने में—क्वास[1] से भरी लकड़ी की बाल्टी और पास ही में टेढ़ी चारपाई थी।

"यह रहा मेरा कोना—अंदर कमरे में गर्मी है...."

पोलीतोव ने झुककर तिरपाल के नीचे से सावधानी के साथ 'प्राव्दा' के पुराने अंक और दो पुस्तिकाएं निकालीं।

उन्हें ग्रिगोरी को थमाकर उसने पैबंद लगी बोरी का मुंह खोला और बोला—

"पकड़ो...."

ग्रिगोरी बोरी का सिरा पकड़े हुए था पर आंखें अखबार की पंक्तियों पर फिसल रही थीं।

पोलीतोव मुट्ठी भर-भरकर आटा डाल रहा था। आधी भरी बोरी को ठसका देकर वह दौड़ा-दौड़ा कमरे में गया।

बैकफैट के दो टुकड़े लाया, बंद गोभी के सूखे पत्ते में लपेटकर उन्हें बोरी में रख दिया और बुदबुदाया—

"घर जाओगे तो यह लेते जाना!"

"नहीं, मैं यह नहीं लूंगा...." ग्रिगोरी भड़क उठा।

"कैसे नहीं लोगे?"

"कह दिया न लूंगा...."

"बोड़म कहीं का!" पोलीतोव ग्रिगोरी पर नजरें गड़ाकर चिल्लाया। उसका चेहरा सफेद पड़ गया। "कहने को तो साथी कहलाता है! भूखा मर जाएगा पर चूं

1. रई नामक अनाज की डबलरोटी से बना पेय।

नहीं करेगा। ने ले नहीं तो दोस्ती खत्म आज से....''

"मैं तुम्हारे मुंह का कौर नहीं छीनना चाहता....''

"मुंह का और छिने दुश्मनों का बातें....'' पोलीतोव ग्रिगोरी को गुस्से में बोरी का मुंह बांधते देखकर कुछ नर्म स्वर में बोला।

सभा पौ फटने से कुछ पहले ही समाप्त हुई।

ग्रिगोरी स्तेपी में चला जा रहा था। कंधे पर आटे की बोरी का बोझ था, छिले पांवों में जलन हो रही थी पर वह प्रभात की लालिमा की ओर उत्साह और उमंग के साथ कदम बढाता चल रहा था।

4

सुबह दून्या आग जलाने के लिए सूखा गोबर बीनने के लिए कुटिया से निकली। ग्रिगोरी बाड़े की ओर से सरपट दौड़ा आ रहा था। दून्या का माथा ठनका।

"क्या कुछ हो गया?''

"ग्रीशा की बछिया मर गई....और तीन ढोर बीमार पड़ गए।'' दम लेकर बोला....''दून्या, जा गांव। ग्रीशा और बाकी लोगों को कह दे कि आज ही आ जाएं ....ढोरों को बीमारी लग गई है।''

जल्दी से सिर पर रूमाल बांधकर टीले के पीछे से उगते सूरज की ओर पीठ करके दून्या टेकरी के रास्ते चल पड़ी।

उसको विदा करके ग्रिगोरी धीरे-धीरे बाड़े की ओर चल पड़ा।

झुंड घाटी में चला गया था और बाड़ के पास तीन बछड़े पड़े थे। दोपहर को तीनों मर गए।....

ग्रिगोरी पागलों की तरह झुंड और बाड़े के बीच दौड़ रहा था—और दो बछड़े बीमार पड गए।

एक बछिया जोहड़ के पास कीचड़ में गिर गई; ग्रिगोरी की ओर मुड़कर करुण स्वर में रंभाने लगी; सूजी आंखों में आंसू भरे थे, उधर ग्रिगोरी के धप से सांवले गालों पर खारे आंसू टप-टप बह रहे थे।

सांझ ढलने पर दून्या मालिकों के साथ लौटी।....

वृद्ध अर्तेमिच निर्जीव बछिया को लाठी से छूकर बोला—

"छूत की बीमारी है यह....अब सारा झुंड बीमार हो जाएगा।''

खाल उतारकर लोथें उन्होंने जोहड़ से कुछ दूर गाड़ दीं। सूखी काली मिट्टी से छोटा-सा टीला बना दिया।

और अगले दिन फिर दून्या को गांव जाना पड़ा। एक साथ सात बछड़े बीमार पड़ गए।....

काले दिनों का तांता लग गया। बाड़ा सूना हो गया। ग्रिगोरी के मन में भी सूनापन छा गया। डेढ़ सौ डंगरों में से पचास बचे थे। छकड़ों पर मालिक आते, मरे बछड़ों की खाल उतारते, घाटी में उथले गड्ढे खोदते, खून में लथपथ लोथें मिट्टी से ढककर चले जाते। झुंड अनिच्छा के साथ बाड़े में जाता, बछड़े खून और उनके बीच रेंगती अदृश्य मौत की अनुभूति से चीख-चीखकर रंभाते।

तड़के, जब सूखकर पीला पड़ा ग्रिगोरी बाड़े का चरमराता फाटक खोलता, झुंड चरने के लिए जाते समय कब्रों के सूखे टीलों के बीच से होकर जाता।

सड़ते मांस की दुर्गंध, बेचैन ढोरों के खुरों से उड़ती धूल, उनका असहाय क्रंदन छा जाता, और तपता सूरज धीरे-धीरे स्तेपी पार अपने अभियान पर चल पड़ता।

गांव से शिकारी आए। बाड़ के चारों ओर उन्होंने गोलियां चलाईं—भयंकर बीमारी को डराने के लिए। पर बछड़े मरते ही जा रहे थे और हर दिन के साथ झुंड घटता ही जा रहा था।

ग्रिगोरी ने ध्यान दिया कि कहीं-कहीं कब्रें खुली हुई हैं, पास ही में चबी हड्डियां पड़ी हैं। रात को बछड़े बेचैन रहते, डरपोक हो गए थे।

रात की नीरवता में अचानक वहशी चीत्कार सुनाई पड़ता और झुंड बाड़ को तोड़ता बाड़े में दौड़ने लगता।

बछड़ों ने टहनियों से बनी बाड़ों को गिरा दिया, झुंड बनाकर कुटिया के पास आ जाते। आग के पास आहें छोड़ते, घास की जुगाली करते सो जाते।

ग्रिगोरी कुछ समझ नहीं पा रहा था। एक बार उसकी नींद कुत्ते के भौंकने से टूटी। उसने चलते-चलते भेड़ की खाल का ओवरकोट पहना और झट से कुटिया के बाहर आया। वह बछड़ों की, ओस में भीगी बगलों से टकराया।

दरवाजे के पास कुछ देर खड़े-खड़े उसने कुत्तों के लिए सीटी बजाई और उत्तर में उसे गल्यूची घाटी से भेड़ियों का लंबा समवेत चीत्कार सुनाई पड़ा। टीले गिर्द उगी झाड़ियों से एक और हुंकारा....

कुटिया में घुसकर उसने दीया जलाया।

"दून्या, सुन रही है?"

प्रातः तारों के साथ ये आवाजें भी बुझ गईं।

5

सवेरे इग्नात चक्की वाला और मिखेई नेस्तेरोव आए। ग्रिगोरी कुटिया में बैठा चप्पलों की मरम्मत कर रहा था। बूढ़े अंदर आए। बूढ़े इग्नात ने टोपी उतारी, कुटिया के कच्चे फर्श पर पड़ती सूर्य की तिरछी किरणों की चमक से आंखें मिचमिचाईं और हाथ उठाया—वह कोने में लटकी, लेनिन की छोटी-सी तस्वीर के सामने सलीब का

निशान बनाना चाहता था। ध्यान से देखकर उसने अपना हाथ झट से जेब में ठूंस लिया। गुस्से में थूककर बोला--

"यह बात है....देव-प्रतिमा मतलब तेरे पास नहीं है?...."

"नहीं है...."

"उसके स्थान पर यह किसकी तस्वीर लटकी है?"

"लेनिन की।"

"तो यही वजह है हमारी मुसीबतों की....भगवान यहां नहीं हैं इसीलिए बीमारी झट से आन पड़ी....इसी वजह से तो बछड़े मर गए....ओहो-हो, हमारे महाराजधिराज...."

"दादा, बछड़े इसलिए मरे कि ढोरों के डॉक्टर को नहीं बुलवाया।"

"पहले तुम्हारे डागडरों के बिना ही रहते थे....बहुत अकलमंद बनता है तू ....पूजा-पाठ वगैरह करता तो ढोरों के डागडर की कोई जरूरत न पड़ती।"

मिखेई नेस्तेरोव नजरें घुमाकर चिल्लाया--

"उतार दे यहां से इस अधर्मी की तस्वीर!....तेरी वजह से, पापी, झुंड मर गया।"

ग्रिगोरी का चेहरा हल्का-सा सफेद पड़ गया।

"अपने घर चलाना हुक्म....गला फाड़ने की जरूरत नहीं....यह सर्वहारा के नेता हैं...."

मिखेई नेस्तेरोव को ताव आ गया, वह तमतमाकर चिल्लाया--

"हमारा खाता है--हमारी तरह ही कर....जानते हैं हम तुम जैसों को....देखते रहना, नहीं तो जल्दी ही अक्ल ठिकाने लगा देंगे।"

उन्होंने बाहर निकलकर टोपी पहनी और बिना कुछ कहे चले गए।

दून्या सहमी-सहमी भाई का मुंह ताकती रह गई।

एक दिन बाद तीखोन लोहार गांव से आया, अपनी बछिया को देखने के लिए।

कुटिया के पास उकडूं बैठकर सिगरेट पीता हुआ, कड़वी मुस्कान के साथ बताने लगा--

"जिंदगी हमारी बहुत बुरी है....पुराने अध्यक्ष को हटा दिया है, अब मिखेई नेस्तेरोव का दामाद हुक्म चलाता है। बस, अपने ढर्रे पर लौटा रहे हैं....कल जमीन का बंटवारा कर रहे थे--जैसे ही किसी गरीब के हिस्से अच्छी जमीन आती वे फिर से बंटवारा शुरू कर देते। अमीर फिर से हमारी गर्दन पर बैठ रहे हैं....ग्रिगोरी प्यारे, सारी बढ़िया जमीनें उन्होंने खुद हथिया लीं। और हमारे दुम्मट जमीन पड़ी...ये बातें हैं...."

ग्रिगोरी आधी रात तक आग के पास बैठा हुआ मकई के चौड़े-चौड़े पीले पत्तों

पर कोयले के टुकड़े से लिखता रहा। उसने जमीन के अन्यायपूर्ण बंटवारे के बारे में लिखा, यह भी लिखा कि ढोरों की बीमारी का इलाज जानवरों के डॉक्टर से करवाने के बजाय गोलियां चलाईं। लिखावट से भरे मकई के पत्तों का बंडल तीखोन लोहार को थमाते हुए बोला--

"अगर शहर जाना हुआ तो पूछ लेना कि 'क्रास्नया प्राव्दा' अखबार कहां छपता है। उन्हें यह दे देना....मैंने विस्तार से लिखा है, बस मोड़ना नहीं, नहीं तो कोयला मिट जाएगा...."

लोहार ने अपनी जली, कोयले से काली उंगलियों से खड़खड़ाती पत्तियों को संभालकर पकड़ा और दिल के पास कमीज के अंदर छिपा लिया। विदा लेते हुए वह उसी मुस्कान के साथ बोला--

"पैदल जाऊंगा शहर, शायद वहां मुझे सोवियत सत्ता मिल जाए....तीन दिन में मैं डेढ़ सौ वेर्स्ता का रास्ता तय कर लूंगा। एक हफ्ते बाद लौटते ही तुम्हें खबर कर दूंगा...."

6

बारिशों और नम कोहरे के साथ पतझड़ का मौसम आ गया था।

दून्या खाने का सामान लाने के लिए सवेरे से गांव गई हुई थी।

बछड़े पहाड़ी की ढलान पर चर रहे थे। ग्रिगोरी कंधों पर चोगा डाले उनके पीछे-पीछे चल रहा था। हथेली में वह मुर्झाई घास के डंठलों को मसल रहा था। हथेली में वह मुर्झाई घास के डंठलों को मसल रहा था। पतझड़ की छोटी सांझ से कुछ पहले टीले से दो घुड़सवार उतरे।

घोड़ों के खुरों की छप-छप सुनाई दी और वे ग्रिगोरी के पास चले आए।

ग्रिगोरी ने उन्हें पहचान लिया। एक अध्यक्ष था--मिखेई नेस्तेरोव का दामाद और दूसरा इग्नात चक्की वाले का बेटा था।

उनके घोड़े झाग के ढके थे।

"नमस्ते, चरवाहे!...."

"नमस्ते!...."

"हम तुम्हारे पास आए हैं...."

अध्यक्ष घोड़े की जीन पर बैठे-बैठे बड़ी देर तक अपनी ठंड से ठिठुरी उंगलियों से फौजी ग्रेटकोट के बटन खोलता रहा; उसने अखबार का पीला पृष्ठ निकाला और हवा में उसे खोलकर बोला--

"तूने यह लिखा था?"

जमीन के बंटवारे, ढोरों की बीमारी के बारे में मकई के पत्तों से उतरे शब्द

ग्रिगोरी की आंखों के सामने तैरने लगे।

"चल, हमारे साथ!"

"कहां?"

"यहीं, घाटी में....एक बात करनी है...." अध्यक्ष के नीले होंठ फड़क रहे थे, आंखें इधर-उधर दौड़ रही थीं।

ग्रिगोरी मुस्कराकर बोला, "जो कहना है, यहीं कर दो।"

"यहां भी कह सकते हैं....अगर तू चाहता है...."

उसने जेब से पिस्तौल निकाली....मचलते घोड़े की लगाम खींचते हुए वह फटे स्वर में चिल्लाया, "कमीने, अखबारों में लिखेगा तू?"

"तुम यह क्यों कर रहे हो?...."

"इसलिए कि तेरी वजह से मुझ पर मुकदमा चलेगा! चुगली करेगा?....बोल, कम्युनिस्ट हरामी!...."

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसने ग्रिगोरी के बंद मुंह पर गोली चला दी।

ग्रिगोरी पिछली टांगों पर खड़े घोड़े के नीचे ढह गया, आह भरकर उसने अकड़ी उंगलियों से पीली-नम घास का गुच्छा उखाड़ा और चिरनिद्रा में सो गया।

इग्नात चक्की वाले का बेटा जीन से कूदकर उतरा, उसने मुट्ठी में काली मिट्टी उठाई और फेनिल खून से भरे मुंह में ठूंस दी....

स्तेपी तो अपार है, भला कभी किसी ने उसे नापा है। यहां असंख्य सड़कें और पगडंडियां बिछी हैं। पतझड़ की रात अंधेरे से भी काली है और बारिश तो घोड़ों के खुरों के निशान बिल्कुल मिटा देगी।....

7

स्तेपी की सड़क है, फुहार पड़ रही है, झुटपुटा छाया है।

उस राही को चलने में क्या कठिनाई जिसके कंधे पर टंगे नन्हे से झोले में जौ की रोटी का टुकड़ा और हाथ में लाठी है।

दून्या सड़क के किनारे-किनारे जा रही है। हवा फटी जाकट के पल्लुओं को फड़फड़ा रही है, पीछे से रुक-रुककर धक्का दे रही है।

चारों ओर बियाबान मनहूस स्तेपी फैली है। अंधेरा छाने लगा है।

सड़क से कुछ दूर टीला दृष्टिगोचर होता है और उस पर जंगली घास के बिखरते छप्पर वाली कुटिया।

दून्या शराबियों की तरह लड़खड़ाती हुई धंसी कब्र के पास जाती है और औंधे मुंह उस पर लेट जाती है।

रात घिर आई है....

दून्या सीधे स्टेशन जाने वाले रास्ते पर चलती जा रही है।

उसको चलने में कोई कठिनाई नहीं हो रही क्योंकि कंधे पर लटके झोले में जौ की रोटी का टुकड़ा, स्तेपी की कसैली धूल की गंध छोड़ती फटी-पुरानी किताब और भाई ग्रिगोरी की सूती कमीज है।

जब दिल उदासी से भर जाता है, आंसुओं से आंखें जलने लगती हैं, तब वह कहीं एकांत में, पराई नजरों से छिपाकर झोले से मैली कमीज निकालती है....उसे चेहरे से सटा लेती है और भाई के पसीने की सुखद गंध को महसूस करती है.... देर तक वह ऐसे ही पड़ी रहती है....

एक के बाद एक वेर्स्ता पीछे छूटते जा रहे हैं। स्तेपी के बीहड़ों से भेड़ियों का चीत्कार सुनाई पड़ रहा है और दून्या सड़क के किनारे-किनारे चली जा रही है, वह शहर जा रही है, जहां सोवियत सत्ता है, जहां सर्वहारा पढ़ते हैं ताकि अपने जनतंत्र का संचालन करना सीख सकें।

लेनिन की पुस्तक में यही कहा गया है।

लच्छन

जली बारूद-की गंध छोड़ते खाली कारतूस, भेड़ की हड्डी, फौजी नक्शा, सैनिक गतिविधियों की रिपोर्ट, घोड़े के पसीने की गंध वाली लगाम, डबलरोटी का टुकड़ा यह सब एक ही मेज पर पड़ा है। उधर खिड़की के दासे से पीठ टिकाए निकोल्का कोशेवोई सीलन के कारण फफूंद लगी खुरदरी बेंच पर बैठा है। उसकी ठंड से अकड़ी उंगलियों में पेंसिल है। मेज पर फैले पुराने पोस्टरों के पास आधा भरा फार्म है। खुरदरे पन्ने पर बस यही लिखा है—कोशेवोई निकोलाई। स्क्वाड्रन कमांडर। खेतीहर परिवार से। रूसी युवक कम्युनिस्ट लीग का सदस्य।

आयु के खाने में पेंसिल ने धीरे-धीरे लिखा अठारह वर्ष।

निकोल्का के कंधे चौड़े हैं, उम्र से बड़ा लगता है। झुर्रियों से घिरी आंखों और बूढ़ों की तरह झुकी कमर के कारण वह प्रौढ़ लगता है।

"बिल्कुल बच्चा है, छोकरा ही है, होंठों पर मां का दूध भी नहीं सूखा अभी," स्क्वाड्रन वाले मजाक में कहते हैं, "पर लाख ढूंढ़ने पर भी ऐसा दूसरा नहीं मिलेगा। दो-दो गिरोहों का सफाया कर चुके हैं और अपना नुकसान न के बराबर है। पूरे छः महीने से स्क्वाड्रन को ऐसी-ऐसी लड़ाइयां लड़ा रहा है। किसी पुराने कमांडर से उन्नीस नहीं है!"

निकोल्का को अपनी अठारह वर्ष की उम्र पर शर्म आती है। हमेशा उम्र के मनहूस खाने में पहुंचकर पेंसिल अटक जाती है और निकोल्का के कपोल शर्म के कारण लाल हो जाते हैं। निकोल्का का पिता कज्जाक था, मतलब वह भी कज्जाक ही हुआ। उसे धुंधले सपने की तरह याद आता है कि जब वह कोई पांच-छः साल का था तो पिता ने उसे अपने फौजी घोड़े पर बिठाया था।

"बेटा अयाल कस के पकड़े रह!" पिताजी चिल्लाकर कह रहे थे और मां रसोई के दरवाजे में खड़ी निकोल्का की ओर देखकर मुस्करा रही थी, उनके चेहरे का रंग उड़ा-उड़ा-सा था, आंखें फाड़े कभी वह घोड़े की पीठ से चिपटी नन्ही टांगों को, तो कभी लगाम पकड़े पिताजी की ओर देख रही थी।

यह बहुत पुरानी बात है। फिर जर्मनी की लड़ाई में निकोल्का का पिता लापता हो गया। उसके ठौर-ठिकाने की कोई खबर नहीं मिली। मां भी मर गई। निकोल्का को अपने पिता से विरासत में घोड़ों से प्यार, अदम्य साहस और लच्छन मिला था—कबूतरी के अंडे जितना बड़ा, ठीक वैसा-जैसा पिता के था, बाईं टांग पर टखने

से कुछ ऊपर। पंद्रह साल की उम्र तक नौकरी-चाकरी करता रहा और बाद में किसी से बरानकोट मांगकर गांव से गुजरती लाल रेजीमेंट के साथ व्रांगेल[1] की फौज से लड़ने चला गया। इन्हीं गर्मियों की बात है, निकोल्का सैन्य कमिसार के साथ दोन में नहा रहा था। वह निकोल्का की धूप से सांवली कुबड़ी पीठ को थपथपाकर हकलाता हुआ बोला–

"तु-तुम....भ-भ-भाग्यशाली हो! हं-हां, भाग्यशाली हो! लच्छन कहते हैं, भाग्य की निशानी होता है।"

निकोल्का ने अपने चिट्टे दांत चमकाकर गोता लगाया, थोड़ी दूर जाकर सिर बाहर निकाला और फुफकारकर चिल्लाया–

"तुम भी क्या अजीब बात कहते हो! बचपन से यतीम हूं, जिंदगी भर लोगों की चाकरी करते-करते कमर झुक गई और तुम कहते हो भाग्यशाली हूं!...."

और दोन को अपने आगोश में समेटती पीली संकरी रेती की ओर तैर पड़ा।

2

वह घर जिसमें निकोल्का टिका था दोन के ऊंचे किनारे पर स्थित था। खिड़की से हरा कछार और पानी की सलेटी सधारा दिखाई पड़ती थी। तूफानी रात को लहरें किनारे से टकरातीं, खिड़कियों के कपाट चरमराते और निकोल्का को लगता कि फर्श की दरारों से रिसकर घर में भरता पानी मकान को झिंझोड़ रहा है।

वह मकान बदलना चाहता था पर शरद तक बस वहीं रह गया। ठिठुरन भरे प्रातःकाल की नीरवता को नाल जड़े बूटों की ठकाठक से भंग करता निकोल्का ड्योढ़ी से निकला और चेरी की बगिया में ओस से नम रूपहली घास पर लेट गया। कोठरी में घर की मालकिन गाय को शांत खड़ा रहने के लिए पुचकार रही थी, बछड़ा जोर-जोर से रंभा रहा था और बाल्टी में दूध की धार गिरने की आवाज आ रही थी।

अहाते का फाटक खटका, कुत्ता भौंकने लगा। प्लाटून नायक की आवाज सुनाई पड़ी–

"कमांडर घर पर हैं?"

निकोल्का कोहनियों के बल उठकर बोला–

"यह रहा! क्यों क्या हुआ?"

"कस्बे से हरकारा आया है। कहता है कि साल्स्क इलाके से गिरोह आया है, ग्रूशिन्स्की राजकीय फार्म पर कब्जा कर लिया उसने...."

---

1. गृहयुद्ध में एक प्रतिक्रांतिकारी जनरल।

"बुलाओ उसे।"

हरकारा गर्म पसीने से तर घोड़े को अस्तबल की ओर खींच ले चला। पर वह आंगन के बीचोंबीच पहले अगली टांगों पर गिर पड़ा और फिर बगल पर लुढ़क गया, नथुने फड़काकर उसने दम तोड़ दिया। उसकी जड़ आंखें जंजीर से बंधे भौंक-भौंककर बेहाल कुत्ते पर टिक गईं। बेचारे घोड़ को इसलिए दम तोड़ना पड़ा क्योंकि उस लिफाफे पर जो हरकारा लाया था क्रॉस के तीन चिह्न बने हुए थे और हरकारा बिना कहीं दम दिए चालीस वेर्स्ता[1] तक घोड़े को बेतहाशा दौड़ाता लाया था।

निकोल्का ने पढ़ा कि अध्यक्ष उसके स्क्वाड्रन की सहायता मांग रहा था। कमरे में तलवार लटकाते समय उसने थकान के साथ सोचा, "कहीं पढ़ने-वढ़ने के लिए जाना चाहिए, इधर यह गिरोह आ टपका....कमिसार ताना मारता है कि एक शब्द भी ठीक से लिख पाता नहीं और कहने को स्क्वाड्रन का कमांडर है....मेरा इसमें क्या दोष है कि चर्च का स्कूल पास करने तक का वक्त नहीं मिला? वह भी बड़ा अजीब है....और इधर यह गिरोह आ टपका....फिर खून-खराबा होगा, मैं तो थक गया हूं ऐसी जिंदगी से....इस सबसे जी उकता चुका है...."

वह चलते-चलते कार्बाइन में गोलियां भरता हुआ बाहर निकला, दिमाग में घोड़ों की तरह विचार सरपट दौड़ते जा रहे थे, "शहर जाने को जी चाहता है....कहीं कुछ पढ़-वढ़ लेता...."

मरे घोड़े के पास से वह अस्तबल की ओर जा रहा था, धूल भरे नथुनों से बहती खून की ऊदी धार को देखकर उसने मुंह फेर लिया।

3

ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर छकड़ों की लीकों में घनी जंगली घास उगी हुई है। कभी इस रास्ते से स्तेपी में सुनहली बूंदों की तरह छिटके खलिहानों को किसानों की बैलगाड़ियां आती-जाती थीं। मुख्य मार्ग टेलीग्राफ के खंभों के साथ-साथ जाता था। खंभों की पांत बीहड़ों और घाटियों को पार करके शरत्कालीन धुंध में विलीन हो रही थी और खंभों के साथ-साथ जाते मार्ग पर सरदार अपने गिरोह को लिए जा रहा था। गिरोह में सोवियत सत्ता से असंतुष्ट दोन और कुबान के पचास कज्जाक शामिल थे। तीन दिन और तीन रातों से वे रेवड़ में मुंह मारे भेड़िए की तरह पगडंडियों और बीहड़ों से भागे जा रहे थे, और निकोल्का कोशेबाई का दस्ता लगातार उनका पीछा कर रहा था।

गिरोह में भूतपूर्व फौजी, शातिर और दुःसाहसी लोग शामिल थे, फिर भी उनका सरदार चिंतित था, रकाब के बल उचक-उचककर आंखों से स्तेपी को

---

1. एक वेर्स्ता—1.06 किलोमीटर।

छान रहा था, दोन के उस पार फैली वन की नीलाभ पांत तक दूरी का अनुमान लगा रहा था।

बस ऐसे ही भेड़ियों की तरह लुकते-छिपते वे जा रहे थे और निकोल्का कोशेवोई का स्क्वाड्रन उनके सिर पर सवार था।

गर्मियों में निर्मल आकाश तले दोने की स्तेपियों में गेहूं की लहलहाती बालियां चांदी की तरह झंकार करती हैं। लुनाई से पहले सलोने, ठोस गेहूं की बालियों के गुच्छे सत्रह बरस के छोकरे की मूंछों की तरह काले हो जाते हैं और जौ की बालियां आदमी से ऊंचाई में होड़ करने लगती हैं।

दाढ़ी वाले कज्जाक किसान वनों-कुंजों के किनारे दुम्मट मिट्टी में रेतीले टीलों पर जौ बोते हैं। फसल उसकी कोई खास नहीं होती, कभी भी एक एकड़ से चार-पांच मन से अधिक नहीं रहती। पर बोते इसलिए हैं कि जौ से देसी वोद्का बनती है, ओस जैसी निर्मल; क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके पुर्खे पीते आए हैं शायद इसीलिए दोन प्रदेश के कज्जाकों के राज्यचिह्न पर भी शराब के पीपे पर बैठा नंगा कज्जाक बना था। पतझड़ के दिनों में बेद की टहनियों की बाड़ों के पीछे कज्जाकों की टोपियां लड़खड़ाती नजर आतीं।

इसीलिए सरदार भी रोज धुत्त रहता, इसीलिए मशीनगन वाली बग्घियों में गाड़ीवान और मशीनगन चालक नशे में झूमते रहते।

गिरोह के सरदार ने सात साल से अपने गांव के दर्शन नहीं किए थे। पहले जर्मनों की कैद में रहा, फिर व्रांगेल की फौज में भर्ती हो गया, धूप में तपता कोंस्तानतीनोपोलिस, कंटीले तारु से घिरा बंदी शिविर, फिर पालदार तुर्क किश्ती, कुबान के घने सरकंडे और अब यह गिरोह।

सब यही थे सरदार की जिंदगी के मुकाम। उसका दिल वैसे ही कठोर हो गया था जैसे कि स्तेपी में झील के सूखे कीचड़ में ढोरों के खुरों के निशान। अंदर ही अंदर से घुन की तरह अजीब-सा दर्द उसे कुतर रहा था, अंग-अंग में क्लांति व्याप्त थी। सरदार महसूस करता था कि इस दर्द और पीड़ा को किसी भी शराब से नहीं बुझाया जा सकता। पर पीता था—एक दिन भी होश में नहीं रहता था क्योंकि दोन की स्तेपियों में पके जौ की मधुर गंध व्याप्त थी और गांवों-कस्बों में फौजियों की गौरवर्ण बीवियां ऐसी वोद्का बनाती थीं जैसे चश्मे का बहता पानी।

4

सुबह तड़के इस साल का पहला पाला पड़ा। कुमुदिनियों के चौड़े पत्तों पर चांदी की तरह बिखर गया, लुकीच को सुबह पनचक्की के पहिए पर अभ्रक की तरह चमचमाते हिमकण दिखाई दिए।

सुबह से लुकीच की तबीयत खराब थी--कमर दुख रही थी, तीखे दर्द से पैरों में मानो सीसा भर गया था। वह चक्की का मुआयना करने लगा, बड़ी मुश्किल से पांव घसीट रहा था, बेढब बदन का हाड़-मांस उसे अलग-अलग होता लग रहा था। दलिया दलने की मशीन से चूहों की बिरादरी निकलकर दौड़ी, पानी से भरी नम आंखें उसने ऊपर उठाई--छत की कड़ी पर बैठा कबूतर गुटरगूं कर रहा था। नथुनों से, जो चिकनी मिट्टी से बने लगते थे, बूढ़े ने सीलन की घुटन भरी बू और पिसे गेंहू की सुंगध को फेफड़ों में खींचा, कान लगाकर सुनने लगा—पानी गुड़-गुड़ करता, चटकारे लेता उन बल्लियों को चूस रहा था जिन पर पनचक्की टिकी थी। सोच में डूबकर वह अपनी दाढ़ीं मसोसने लगा।

लुकीच दम लेने के लिए मधुवाटिका में जाकर लेट गया। भेड़ की खाल का ओवरकोट ओढ़कर सो गया, मुंह खुला था, होंठों के कोनों में जमी लसदार और गर्म राल से दाढ़ी भीग रही थी। सांझ के झुटपुटे ने बूढ़े की कुटिया पर स्लेटी रंग पोत दिया था, कोहरे के दूधिया चिथड़ों ने पनचक्की को लपेट लिया....

जब लुकीच की आंख खुली तो उसे जंगल से आते दो घुड़सवार नजर आए। उनमें से एक मधुवाटिका में बूढ़े को देखकर चिल्लाया—

"बाबा, इधर आओ!"

लुकीच शक की नजर से उन्हें देखकर खड़ा हो गया। इन अशांत वर्षों में वह ऐसे अस्त्रधारी लोगों को बहुत देख चुका था जो बिना पूछे चारा और आटा ले लेते थे। कोई भेद किए बिना वह उन सबसे गहरी नफरत करता था।

"जल्दी आ, खूसट बुड्ढे ।"

छत्तागरों के बीच से, बदरंग होंठों से निःशब्द बुदबुदाता हुआ लुकीच धीरे-धीरे चलकर मेहमानों से कुछ दूरी पर खड़ा हो गया। वह उनको तिरछी नजरों से देख रहा था।

"हम लाल फौज के हैं, बाबा....तुम हमसे डरो नहीं," शांत स्वर में सरदार फुसफुसाया। "हम गिरोह का पीछा कर रहे हैं, अपने लोगों से पिछड़ गए हैं....कल यहां से कोई दस्ता गुजरा था, शायद तुमने देखा हो?"

"हां कोई गए तो थे इधर से।"

"बाबा, किधर गए वो?"

"शैतान जाने, मेरी बला से!"

"तुम्हारी चक्की में तो उनमें से कोई नहीं रहा?"

"नहीं," कहकर लुकीच ने उनकी ओर पीठ फेर ली।

"रुक बुड्ढे।" सरदार कूदकर घोड़े से उतर गया, टेढ़ी टांगों पर नशे में डगमगाया और मुंह से देसी वोद्का की तीखी बू छोड़कर बोला, "हम, बाबा, कम्युनिस्टों का सफाया कर रहे हैं....हां-हां!....और हम हैं कौन, यह तुम्हारी अक्ल

की बात नहीं!" उसे ठोकर लगी और लगाम हाथ से छूट गई। "तुम्हारा काम बस सत्तर घोड़ों के लिए चारा देना और चुप रहना है....पलक झपकते ही हो जाना चाहिए यह काम!....समझे? कहां है अनाज?"

"नहीं है," नजर चुराकर लुकीच बोला।

"उस कोठरी में क्या है?"

"कबाड़-वबाड़ भरा है....अनाज नहीं है!"

"चल जरा, देखूं मैं भी!"

बूढ़े का कालर पकड़कर घुटने से धक्के देता वह जमीन में धंसी टेढ़ी दीवारों वाली कोठरी की ओर चल पड़ा। दरवाजा खोला। खत्तियों में गेहूं और जौ भरा था।

"क्या यह अनाज नहीं है, हरामी बुड्ढे?"

"अनाज है, अन्नदाता....पिसाई के लिए है....साल भर एक-एक दाना करके मैंने इसे जमा किया और तुम हो कि घोड़ों को खिलाना चाहते हो...."

"तो तू क्या चाहता है कि हमारे घोड़े भूखों मर जाएं? तू क्या लाल वालों का तरफदार है, अपनी मौत को बुलावा दे रहा है?"

"दया करो मुझ पर, भले आदमी! मेरा कसूर क्या है?" टोपी उतारकर लुकीच घुटनों पर गिर पड़ा और सरदार के बालों से ढके हाथों को चूमने लगा....

"बोल—तुझे लाल वाले पसंद हैं?"

"माफ करो मुझे, रहमदिल!.... मेरी बेवकूफी माफ कर दो। कर भी दो माफ, मुझे मारो नहीं," सरदार की टांगों से लिपटकर बूढ़ा गिड़गिड़ाने लगा।

"सौगंध खा कि तू लाल वालों का तरफदार नहीं है....नहीं, सलीब बनाने से काम नहीं चलेगा, मिट्टी खाकर दिखा!...."

बूढ़े ने मुट्ठी में रेत भरी और अपने पोपले मुंह में डालकर उसे चबाने लगा, उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी।

"ठीक है, अब मैं यकीन करता हूं। चल, उठ बुड्ढे!"

बूढ़ा अपनी सुन्न टांगों पर खड़ा न हो पा रहा था। उसे इस हालत में देखकर सरदार हंसने लगा। उधर वहां जमा हुए घुड़सवार खत्तियों से निकालकर जौ और गेहूं घोड़ों के पैरों में डाल रहे थे, आंगन को सुनहरे दानों से पाट रहे थे।

5

कोहरे और धुंध से भरी भोर थी।

लुकीच संतरी की आंख बचाकर सिर्फ उसी को ज्ञात पगडंडी से, सड़क से नहीं, बीहड़ों और उनींदे वन को पार करता हुआ गांव की ओर दौड़ पड़ा।

पनचक्की के पास पहुंचकर वह बगल की गली से बड़ी सड़क पर मुड़ना चाहता ही था कि उसके सामने घुड़सवारों की धुंधली आकृतियां प्रकट हुईं।

"कौन है?" नीरवता में कड़कती आवाज सुनाई दी।

"मैं हूं...." लुकीच बुदबुदाया, हाथ-पांव फूल गए, थर-थर कांपने लगा।

"कौन हो? पास है? किस काम से घूम रहे हो?"

"चक्की वाला हूं मैं....यहीं की पनचक्की से। काम से गांव जा रहा हूं।"

"किस काम से? चलो, कमांडर के पास! आगे-आगे चल...." घोड़े को आगे बढ़ाकर उनमें से एक चिल्लाया।

लुकीच को अपनी गर्दन पर घोड़े के गर्म-नम होंठों की अनुभूति हुई और वह लंगड़ाता हुआ गांव की ओर चल पड़ा।

चौक में खपरैल से ढके मकान के सामने वे रुक गए। संतरी कराहकर घोड़े से उतरा और उसे बाड़ से बांधकर तलवार खड़खड़ाता ऊंचे ओसारे पर चढ़ा।

"मेरे पीछे-पीछे चलता आ!...."

खिड़कियों में रोशनी टिमटिमा रही थी। उन्होंने घर में प्रवेश किया।

लुकीच को तंबाकू के धुएं के मारे छींक आ गई, उसने टोपी उतारकर झट से देवस्थान की ओर मुंह करके सलीब का चिह्न बनाया।

"बूढ्ढे को पकड़ा है। गांव में जा रहा था।"

निकोल्का ने मेज पर टिका अस्त-व्यस्त बालों वाला अपना सिर उठाया, उनींदे, पर कड़े स्वर में पूछा—

"कहां जा रहा था?"

लुकीच आगे बढ़ा और खुशी के कारण उसे उच्छू आ गई।

"अरे, यह तो अपने ही हैं, मैं तो सोच रहा था कि फिर से वो अधर्मी आ गए हैं....बहुत डर गया था, पूछते हुए भी डर लग रहा था....मैं चक्की वाला हूं। जब मित्रोखिन के जंगल से तुम लोग जा रहे थे तो मेरे यहां ठहरे थे, मेरे प्यारे, मैंने तुमको दूध पिलाया था....क्या भूल गए?...."

"अच्छा, कहना क्या चाहते हो?"

"मेरे प्यारे, कहूंगा यह—कल शाम को वो गिरोह वाले मेरे यहां आकर घोड़ों को अनाज खिलाने लगे!....मेरी हंसी उड़ाने लगे....और उनका सरदार बोला—हमारा साथ देने की शपथ ले, जबर्दस्ती मिट्टी खिलवाई मुझे।"

"इस वक्त कहां है?"

"वहीं हैं। अपने साथ ढेरों वोद्का लाए हैं, पापी कहीं के, मेरे घर में पी रहे हैं और मैं दौड़ा-दौड़ा तुम्हें खबर करने आ गया, तुम्हीं कुछ करो उनकी शक्ल ठिकाने लगाने के लिए।"

"घोड़ों को तैयार करने को कह दो!....बूढ़े की ओर मुस्कराता हुआ निकोल्का बेंच से उठा और थकान के साथ बरानकोट की आस्तीन खींची।

6

दिन निकल आया था।

रातों जागते रहने के कारण निकोल्का का चेहरा पीला पड़ गया था। वह घोड़े को दौड़ाता हुआ मशीनगन वाली बग्घी के पास जाकर बोला–

"जैसे ही हल्ला बोलेंगे तुम दाएं बाजू पर मार करना। हमें उनका पहलू तोड़ना है!"

और मार्च के लिए तैयार स्क्वाड्रन की ओर चला गया।

मरियल वलूतों के कुंज के पीछे सड़क पर घुड़सवार दिखाई पड़े चार-चार की पांतों में, बीच में मशीनगनों वाली बग्घियां थीं।

"सरपट दौड़ाओ!" निकोल्का चिल्लाया और अपनी पीठ पीछे खुरों की बढ़ती गरज को महसूस करके उसने अपने घोड़े को चाबुक लगाया।

वन के आंचल पर मशीनगन बेतहाशा ठक-ठक करने लगी और वे जो सड़क पर थे तेजी से, जैसे कि युद्धाभ्यास के समय, बिखर गए।

तूफान से गिरे पेड़ों के ढेर से निकलकर भेड़िया दौड़ता हुआ टीले पर चढ़ गया। उसके सारे बदन पर गोखरू चिपके हुए थे। थूथनी उठाकर उसने टोह ली। पास ही में धांय-धांय गोलियां चल रही थीं, चीत्कारों का नाद-निनाद सुनाई पड़ रहा था।

"ठुक!" आल्डर के कुंज में गोली चलती और कहीं टीले के पार से, जोतों के पार से प्रतिध्वनि बड़बड़ाती, "ठाक!"

और फिर, "ठुक, ठुक, ठुक" होने लगी। टीले के पार से जवाब में "ठाक! ठाक! ठाक!" सुनाई पड़ती।

भेड़िया कुछ देर तक खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे घाटी में, सूखी ऊंची घास में विलीन हो गया....

"संभालकर!...मशीनगनों को बग्घियों को मत छोड़ना!....झाड़ियों में....अरे झाड़ियों में चलो, तुम्हारी मां को!..." सरदार रकाब में खड़ा होकर चिल्ला रहा था।

पर मशीनगनों की बग्घियों के पास गाड़ीवान और मशीनगन चालक हड़बड़ी में रासे काट रहे थे और मशीनगनों की निरंतर गोलीबारी से जगह-जगह टूटी पांत बिखरकर सिर पर पांव रखकर भाग पड़ी।

सरदार ने घोड़ा मोड़ा, उसकी ओर एक घुड़सवार अपने घोड़े को सरपट दौड़ाता, तलवार घुमाता आ रहा था। छाती पर झूलती दूरबीन और नमदे के लबादे को देखकर सरदार समझ गया कि यह मामूली लाल सैनिक नहीं है और उसने अपने घोड़े की लगाम खींची। दूर से ही उसे बिना मूंछों वाला युवा चेहरा दिखाई पड़ा, क्रोध से विकृत, हवा के कारण मिची-मिची आंखें। सरदार का घोड़ा पिछली टांगें झुकाकर एक ही स्थान पर नाच पड़ा, पेटी में फंसी पिस्तौल को झटके से निकालकर वह चिल्लाया—

"दुधमुंहे पिल्ले!....घुमा, घुमा अपनी तलवार, मैं तुझे दिखाता हूं!"

सरदार ने तेजी से पास आते काले लबादे पर गोली चलाई। आठ-एक गज दौड़कर घोड़ा गिर पड़ा, निकोल्का ने लबादा उतार फेंका, वह गोलियां चलाता हुआ सरदार के पास आता जा रहा था....

झाड़-झंखाड़ के पीछे से किसी का बहशी चीत्कार अधूरा रह गया। बादल ने सूरज को ढक दिया और स्तेपी, सड़क, हवाओं और पतझड़ से ठिठुरते वन पर परछाइयां तैरने लगीं।

"बच्चा है, होंठों पर दूध अभी सूखा नहीं, जरूरत से ज्यादा गर्म-मिजाज है, इसीलिए अब इसे मौत अपने पंजों में दबोच लेगी," सरदार के दिमाग में रुक-रुककर ये विचार कौंध रहे थे और जब निकोल्का की पिस्तौल खाली हो गई, तो सरदार ने लगाम छोड़ दी और चील की तरह उस पर झपट पड़ा।

जीन से झुककर उसने तलवार घुमाई, प्रहार से धराशाई होती देह की उसे क्षणिक अनुभूति हुई। सरदार कूदकर घोड़े से उतरा, मृतक की गर्दन से लटकी दूरबीन उतारी, कंपकंपाती टांगों पर नजर डाली। इधर-उधर देखकर वह झुककर मृतक से क्रोम-लेदर के बूट उतारने लगा। चटकते घुटने पर पैर टिकाकर उसने झट से एक बूट उतार डाला। दूसरा बूट नहीं उतर रहा था, शायद मोजा खिसक गया था, गुस्से में गाली देकर उसने झटके से मोजे सहित बूट उतार लिया। पैर पर, टखने से ऊपर उसे कबूतरी के अंडे जितना बड़ा लच्छन दिखाई पड़ा। धीरे-धीरे, मानो उसे डर हो कि कहीं जाग न जाए, उसने ठंडा पड़ता सिर घुमाकर चेहरा अपनी ओर मोड़ा, मुंह से कलकल बहती खून की धारा से उसके हाथ सन गए। गौर से चेहरे को देखकर ही वह टेढ़े कंधों से लिपटकर भर्राई आवाज में बोला—

"बेटे!....निकोल्का, बेटे!....मेरे लाल!....मेरे कलेजे के टुकड़े!...."

नीला पड़कर वह चिल्लाया—

"कम से कम एक शब्द तो बोल! यह हो कैसे गया?"

बुझती आंखों, खून से तर पलकों को देखकर उसने अपना माथा पटका, फिर उठकर निर्जीव देह को झिंझोड़ने लगा....पर निकोल्का ने नीली जीभ कसकर दांतों में भींच रखी थी, मानो उसे डर था कि कहीं कोई बड़ी और अहम बात

उसके मुंह से न निकल जाए।

सरदार ने बेटे के ठंडे पड़ते हाथों को छाती से लगाकर चूमा और दांतों में पिस्तौल की पसीजी नाल भींचकर अपने मुंह में गोली चला दी....

और शाम को जब झाड़ियों के पीछे से घुड़सवार प्रकट हुए, हवा उनके स्वरों और रकाबों की खड़बड़ को उड़ाकर पास लाने लगी, सरदार के बिखरे बालों वाले सिर से एक गिद्ध अनिच्छा के साथ उड़ा। उड़कर वह शरत्कालीन धुंधले, बदरंग आकाश में विलीन हो गया।

पाँच कहानियाँ